पंजीयन क्रमांक : 70269/98
आई एस एस एन : 0972-169X

डाक पंजीयन क्रमांक : डी एल–एस डब्ल्यू–1/4082/15-17
डाक से भेजने की तिथियां : 26-27 अग्रिम माह की
प्रकाशन तिथि : अग्रिम माह की 24 तारीख

विज्ञान प्रसार

ड्रीम 2047

मई 2017 खण्ड 19 अंक 8 5.00 रुपए

ऑटो हान:
नाभिकीय विखंडन के खोजकर्ता

संपादकीय – अपने देश में विज्ञान संचार गतिविधियों का समेकन 2

ऑटो हान: नाभिकीय विखंडन के खोजकर्ता 3

अपनी आंखों को स्वस्थ रखें 6

फीनॉल: पर्यावरण के लिए एक गंभीर खतरा 7

चिकित्सा विज्ञान में अकस्मात हुई खोजें 9

बवासीर रोग निवारण सरल उपचार एवं सर्जरी विधियां 13

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां 16

... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ढंग से करें ... वैज्ञानिक ढंग से सोचें, वैज्ञानिक ...

अपने देश में विज्ञान संचार गतिविधियों का समेकन

डॉ. आर. गोपीचन्द्रन

यह ज्ञात है कि भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय की विज्ञान संग्रहालयों की राष्ट्रीय परिषद, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी अनुसंधान परिषद का राष्ट्रीय विज्ञान संचार एवं सूचना संसाधन संस्थान (निस्केयर), विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी) की राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (एनसीएसटीसी) तथा (डीएसटी) का ही विज्ञान प्रसार वर्षों से शानदार विज्ञान संचार गतिविधियां चला रहे हैं। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सामूहिक रूप से इनके कार्य का प्रभाव बहुत सार्थक रहा है। उदाहरण के लिए निस्केयर की लोकप्रिय विज्ञान पत्रिका साइन्स रिपोर्टर से विद्यार्थियों की कई पीढ़ियों ने लाभ उठाया है और देश भर में फैले विज्ञान संग्रहालयों ने देश के कोने-कोने में नागरिकों तक पहुंच बनाई है। ये विज्ञान लोकप्रियकरण में सफलताओं के दो प्रारूपिक उदाहरण हैं। एनसीएसटीसी समर्थित कई तृणमूल स्तरीय पहलों ने नागरिकों को विज्ञान से जोड़ा है। विज्ञान प्रसार के प्रकाशन और सॉफ्टवेयर, जिनमें वह पत्रिका भी शामिल है जिसमें यह संपादकीय छप रहा है, लगातार हजारों नागरिकों और संस्थानों तक पहुंचते रहे हैं। विज्ञान प्रसार की सामग्री 'मुक्त शैक्षिणिक संसाधनों के राष्ट्रीय भंडार' में भी सन्निहित है और अब पिछले लगभग सात वर्षों के इसके रेडियो एवं दूरदर्शन कार्यक्रमों ने मास मीडिया के माध्यम से फोकसित विज्ञान संचार के मूल्य को औपचारिक रूप से स्थापित किया है।

आपको यह जान कर अच्छा लगेगा कि विज्ञान प्रसार व्यापक पैमाने पर नागरिकों के नियोजन की दो अन्य बड़ी पहल कर रहा है। ये हैं भारतीय विज्ञान समाचार फीचर सेवा तथा भारतीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पोर्टल। यद्यपि इनके विषय में विस्तार से चर्चा मैं शीघ्र ही करूंगा। फिर भी यहां मैं इस बात को स्पष्ट करना चाहता हूं कि ये प्रक्रम सच्चे अर्थों में समावेशी हैं। इनमें देश भर में किए जाने वाले विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं नवाचार के पटल की सम्पूर्ण गतिविधियों और सफलताओं पर समुचित प्रकाश डाला जाएगा जिससे उनकी अधिकाधिक लोगों तक पहुंच और इसके कारण होने वाली अन्योन्य क्रियाओं में वृद्धि होगी। इस तथ्य को मान्यता देना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि भारत की ज़मीन खासकर इन तीन मोर्चों पर बहुत ही उपजाऊ है और इसलिए जितने भी लोग इन क्षेत्रों में योगदान करना चाहें, पारस्परिक तालमेल से अपने प्रयासों को प्रस्तुत कर सकते हैं और परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। विज्ञान प्रसार भाग्यशाली है कि वह इस मोर्चे पर योगदान के लिए समाचार माध्यमों के कुछ विख्यात विशेषज्ञों को विनियोजित करने में सफल हुआ है। पोर्टल भी समावेशी होगा और अनुसंधान एवं विकास क्षेत्र के मील के पत्थरों एवं सफलताओं, विभिन्न क्षेत्रों के प्रमुख विशेषज्ञों सहित ज्ञात नेटवर्कों तथा द्विपक्षी एवं बहुपक्षी विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं नवाचारी (एसटीआई) ढांचों में अवसर प्राप्ति और भारत के नेतृत्व के पक्षों को उजागर करेगा। समाचार फीचर सेवा एवं पोर्टल की गतिविधियों की सुपारिभाषित कार्य योजनाएं होंगी ताकि सहयोगी संस्थाओं और नागरिकों तक पंहुच बने और सभी को ऐसे उपयुक्त रूप से परिष्कृत मंच और अवसर प्राप्त हो सकें जिससे वे सभी एक साथ सेवा प्रदान करें।

ये रोचक और अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, विशेषकर, इसलिए कि इनमें विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार के मूल्यवर्धन एवं विस्तार की पुकार का उत्तर निहित है। यह भी समान महत्व का है कि उन अंतर्दृष्टियों और उपक्रमों की सफलताओं को अभिलेखित किया जाए जो देश भर में एसटीआई आधारित नागरिक विनियोजन की दृढ़ता के लिए वास्तविक रूप में उत्तरदाई हैं। मैं यह सुझाव प्रस्तुत करता हूं कि विज्ञान, प्रौद्योगिकी, नवाचार संचार की तृणमूल स्तर पर संचालित होने वाली गतिविधियों का सार-संग्रह निर्मित करना एक अनिवार्य और सामयिक विचार है। इससे स्थानीय स्तर पर होने वाली गतिविधियों के लिए स्थानीय स्तर के नेतृत्व को परस्पर जुड़ने में सहायता मिलेगी जो कि बहुत ही आवश्यक और वांछित है। इस प्रकार समयबद्ध ढंग से उपयुक्त सूचना प्रदान करने में सहायता देने वाले प्रक्रमों के बीच संबंधों तथा ऐसी कार्यनीति के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले अपेक्षित प्रभावों की व्याख्या हो सकेगी। सबसे अधिक महत्वपूर्ण यह होगा कि सफलता के प्रेरकों तथा आगे सुधार हेतु एसटीआई संचार की सीमाओं और संभावनाओं को समझना और अभिलेखित करना संभव हो जाएगा। सबसे बड़ी बात यह है कि इन तर्कों को ध्यान में रखने से हमारे देश में संचार प्रक्रमों को बल देने के लिए अत्यंत आवश्यक नीचे से ऊपर को जाने वाले रास्ते का महत्व प्रदर्शित करना संभव हो जाएगा। तर्कसंगत ढंग से तब विज्ञान संचार सिद्धांतों का सत्यापन संभव हो जाएगा। जिससे देश में विज्ञान संचार के वृहत्तर एजेंडे को पूरा करने के लिए आवश्यक ज्ञान ढांचे और सूचना प्रवाह के पथ मार्गों को निर्मित किया जा सकेगा।

इस आवाहन का मुख्य उद्देश्य इस तथ्य को स्थापित करना है कि जहां तक विज्ञान संचार का सवाल है तो हमारे देश में बहुत कुछ ज़मीन पर उतारा गया है। आगे के रास्ते के रूप में विज्ञान संचार के सिद्धांतों और व्यवहारों पर आधारित इसकी गतिकी को समझना वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण है। विज्ञान संचार को महत्वहीन होने से रोकने तथा व्यापक पैमाने पर एसटीआई संचार प्रक्रम में निर्वाध अवस्थांतरण सुनिश्चित करने की दिशा में यह एक महत्वपूर्ण चरण है।

ई-मेल: r.gopichandran@vigyanprasar.gov.in

(अनुवादः रामशरण दास) ■

संपादक : आर. गोपीचन्द्रन
संयुक्त संपादक : रिन्टू नाथ
प्रॉडक्शन : मनीष मोहन गोरे एवं प्रदीप कुमार
भाषा संपादन : रघुबर दत्त रिखाड़ी
पत्र व्यवहार का पता : विज्ञान प्रसार, सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016
दूरभाष : 011-26967532; फैक्स : 0120-2404437
ई-मेल : dream@vigyanprasar.gov.in
वेबसाइट : http:èèwww.vigyanprasar.gov.in

''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों/प्रलेखों में व्यक्त लेखकों के कथनों, मतों व सुझावों के लिए विज्ञान प्रसार किसी भी रूप में उत्तरदाई नहीं है।
''ड्रीम 2047'' में प्रकाशित लेखों के अंश, सौजन्य/साभार के साथ पुनर्प्रकाशित/उद्धृत किए जा सकते हैं बशर्ते वे पत्र-पत्रिकाएं निःशुल्क वितरित की जा रही हों जिनमें पुनर्प्रकाशन किया जा रहा है।

विज्ञान प्रसार के लिए मनीष मोहन गोरे द्वारा सी-24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली-110 016 से प्रकाशित तथा उन्हीं की ओर से अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स, प्रा. लि., ओखला औद्योगिकी क्षेत्र, फेस-II, नई दिल्ली-110 020 द्वारा मुद्रित। फोन : 011-26388830-32

ऑटो हान:
नाभिकीय विखंडन के खोजकर्ता

सुबोध महंती
ई-मेल: subodhmahanti@gmail.com

''अपने पूर्ववर्ती कैकुले की तरह हान भी शुरू में वास्तुकला में अपना करिअॅर बनाने को इच्छुक थे। लेकिन, रसायन विज्ञान, जिसका अध्ययन उन्होंने मारबर्ग में किया था, में रुचि ने वास्तुकला में कॅरिअर से उन्हें विमुख किया। सन् 1904 में, उन्होंने लंदन में 6 महीने बिताए जिससे विलियम रैम्जे के दिशा निर्देशन में रेडियोरसायन, जो उन दिनों एक अभिनव क्षेत्र था, से उनका परिचय हुआ।''

– *द कैम्ब्रिज डिक्शनरी ऑफ साइंसेस* (द्वितीय संस्करण), 2002

''प्रोफेसर माइटनर ने कहा था कि नाभिकीय विखंडन के लिए रसायन विज्ञान को श्रेय दिया जा सकता है। मुझे इसमें एक छोटा-सा संशोधन करना है; रसायन विज्ञान ने भिन्न पदार्थों को केवल विलगित करने का काम किया लेकिन परिशुद्धता से उनकी पहचान नहीं की। प्रोफेसर हान द्वारा विकसित विधि से ही यह संभव हो पाया। यही उनकी उपलब्धि थी।''

– जर्मन टेलीविजन, एआरडी को 8 मार्च 1958 को फ्रिट्ज स्ट्रॉसमैन द्वारा दिए गए एक साक्षात्कार में (जिसमें लिजे माइटनर ने भी भाग लिया था)

''युद्धोत्तर जर्मनी में, पहले जिसे यूरोप का सबसे गर्व करने योग्य वैज्ञानिक प्रतिष्ठान माना जाता था, ऑटो हान उसके सर्वाधिक सम्मानित वयोवृद्ध व्यक्ति बने। उन्हें अनेक सम्मान एवं पुरस्कार प्राप्त हुए, जिनमें नाभिकीय विखंडन के लिए उन्हें मिलने वाला रसायन विज्ञान का नोबेल पुरस्कार भी शामिल था। लेकिन इन पुरस्कारों और सम्मान को उन्होंने अपनी खास विनम्रता से स्वीकार किया। जब किसी परमाणु रिएक्टर या नाभिकीय बिजलीघर को देखने वह पंहुचते तब विनयपूर्वक यही कहते: 'यह सब औरों के कार्य द्वारा भी संभव हुआ है।' शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली 300 पृष्ठों वाली एक स्मारिका में उन्होंने अपने ऐतिहासिक कार्य के विवरण को पांच पृष्ठों से भी कम में समेट कर रख दिया। पिछले सप्ताह, 89 वर्ष की आयु में विखंडन के जनक ने अपने प्रिय गाटिंजेन में हमेशा के लिए शांतिपूर्वक अपनी आंखें मूंदी। ''

– द टाइम मैग्जीन, न्यूयॉर्क, 9 अगस्त 1968

ऑटो हान रेडियोरसायन एवं नाभिकीय विज्ञान के पुरोधा थे। अनेक रेडियोएक्टिव समस्थानिकों (रेडियोआइसोटोप्स) की खोज से वह जुड़े थे। उन्होंने नाभिकीय समावयवता, जो तब उत्पन्न होती है जब भिन्न रेडियोएक्टिव गुणधर्म वाले नाभिकों की परमाणु संख्या एवं द्रव्यमान अभिन्न होते हैं, को परिभाषित किया। हान नाभिकीय विखंडन की खोज, जिसे उन्होंने आस्ट्रिया मूल की स्वीडन निवासी लिजे माइटनर (1878-1968) तथा जर्मन रसायनविद् फ्रिट्ज स्ट्रॉसमेन (1902-1980) के साथ मिलकर किया था, के लिए ही अधिक जाने जाते हैं। इस खोज, जिसकी घोषणा सन् 1939 में की गई, को बीसवीं सदी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण खोजों में से एक माना जाता है। हान को वर्ष 1944 का रसायनविज्ञान का नोबेल पुरस्कार उनकी ''भारी नाभिक के विखंडन की खोज'' के लिए दिया गया। हान की यह खोज एक लंबी वैज्ञानिक यात्रा का आरंभिक बिंदु थी। नाभिकीय विखंडन की 75वीं वर्षगांठ के अवसर पर इंटरनेशनल एटॉमिक एनर्जी एजेंसी (आईएईए) के महानिदेशक ने कहा था:'' ऑटो हान, लिजे माइटनर और फ्रिट्ज स्टॉसमेन का पुरोगामी कार्य उस लंबी वैज्ञानिक यात्रा, जो नाभिकीय प्रौद्योगिकी, जैसा कि आज हम इसे समझते हैं, के विकास का कारण बनी,

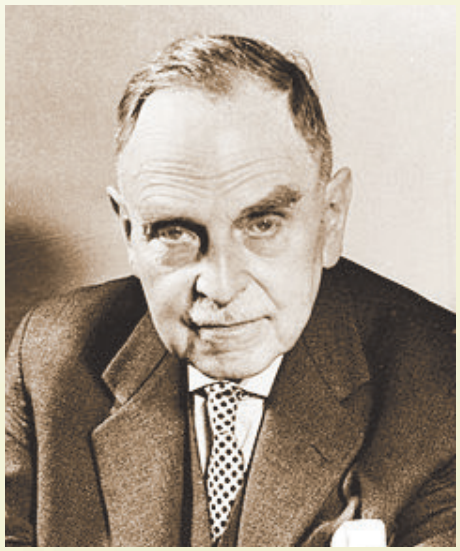

ऑटो हान

की दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम था।''

ऑटो हान का जन्म 8 मार्च 1879 को फ्रैंकफर्ट-एम-मेन, जर्मनी में हुआ था। उन्होंने बाद में स्वीकार किया कि स्कूल में वह एक मेधावी छात्र नहीं थे। इस बारे में उन्होंने लिखा: ''स्कूल में मैं एक ठीक-ठाक और सामान्य न कि एक असाधारण प्रतिभा वाला छात्र था। मुझे याद आता है जब मैं छठे दर्जे में गया तो अठारहवें स्थान (जो प्राइमरी स्कूल में मेरा क्रम था) से मैं तीसरे स्थान पर चला आया। यह मुख्य रूप से इसलिए क्योंकि मैंने अपनी प्रथम विदेशी भाषा, फ्रैंच को जल्दी सीख लिया था तथा इसके अच्छे से उच्चारण का भी मुझे अभ्यास हो गया था। लेकिन मैं बराबर तीसरे, चौथे या पांचवें क्रम में ही रहा और कभी प्रथम स्थान नहीं प्राप्त कर पाया।''

रसायन विज्ञान की ओर हान का रुझान कम उम्र में ही हो गया था। इस बारे में उन्होंने लिखा: ''मेरी रसायन विज्ञान में रुचि पंद्रह वर्ष की आयु से ही आरंभ हो गई थी; मैं और मेरा एक मित्र रसायन वैज्ञानिक 'प्रयोगों' को 'वाश किचन', जो जर्मन भाषा में सामान्यतया धुलाई-घर यानी लौंड्री के लिए इस्तेमाल होने वाला शब्द था, में अंजाम दिया करते थे। इसके एक या दो साल में मेरी रुचि और बढ़ी, और जब में स्कूल के सबसे ऊंचे दर्जे में पढ़ रहा था तब मैंने फिजिकल सोसाइटी (फ्रैंकफर्ट यूनिवर्सिटी का अग्रदूत) में कार्बनिक सामग्रियों (ऑर्गेनिक स्टफ्स) पर प्रोफेसर मार्टिन फ्रायड द्वारा दिये जाने वाले एक सायंकालीन पाठ्यक्रम में अपनी हाजिरी दी।'' अब तो यह स्वाभाविक लगने लगा कि हान रसायन विज्ञान में ही अपना कॅरिअर बनाना चाहते हैं। लेकिन हान के पिता, जो एक सफल व्यापारी थे, अपने पुत्र को वास्तुकला में प्रशिक्षित होते देखना चाहते थे। इस प्रकार परिवार के घोर विरोध के बाद उन्हें अंततः मारबर्ग यूनिवर्सिटी में रसायन विज्ञान पढ़ने की अनुमति मिली। उन्होंने सन् 1897 में इस यूनिवर्सिटी में प्रवेश किया। उन्होंने अपने तीसरे एवं चौथे सैमिस्टरों में यूनिवर्सिटी ऑफ म्यूनिख में एडॉल्फ वॉन बायर के दिशा-निर्देशन में कार्य किया।

सन् 1901 में हान ने मारबर्ग यूनिवर्सिटी से पी-एच.डी की डिग्री ली। उनके शोध निर्देशक जर्मन कार्बनिक रसायनविद थियोडोर जिंके थे। पी-एच.डी करने के बाद हान का विचार औद्योगिकी कॅरिअर बनाने का था। इस दौरान काले एंड कंपनी के अध्यक्ष ने हान के शोध निर्देशक को बताया कि कंपनी एक युवा कार्बनिक रसायनविद् को नौकरी दे सकती थी, लेकिन इसके लिए अभ्यर्थी को एक अन्य देश के बारे में जानकारी तथा दूसरी भाषा में महारथ होना आवश्यक था। हान की रुचि को देखते हुए जिंके ने उन्हें इंग्लैंड जाने ओर अंग्रेजी सीखने की सलाह दी। जिंके ने यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ लंदन में विलियम रैम्जे की प्रयोगशाला में काम करने के लिए हान के इंग्लैंड में रहने की व्यवस्था भी

की। अपने शोध निर्देशक की सलाह पर हान इंग्लैंड गए और उन्होंने विलियम रैम्जे की प्रयोगशाला में काम करना आरंभ किया। रैम्जे के निर्देश पर हान एक रेडियोएक्टिव पदार्थ, जिसे रैम्जे श्रीलंका (तब सिलॉन) से लाए थे, से रेडियम पृथक करने के कार्य में लग गए। रैम्जे की प्रयोगशाला में काम करते हुए हान ने एक नए (रेडियोएक्टिव) पदार्थ की खोज की। यह पदार्थ थोरियम का अति सक्रियता प्रदर्शित करने वाला रेडियोएक्टिव रूप था जिसे उन्होंने 'रेडियोथोरियम' नाम दिया। बाद में इसे थोरियम के एक नए रेडियोआइसोटोप जिसकी द्रव्यमान संख्या 228 थी, के रूप में पहचाना गया।

विलियम रैम्जे

वह रैम्जे ही थे जिन्होंने हान के कॅरियर को आकार देने में एक निर्णायक भूमिका निभाई। रैम्जे ने हान को रेडियोएक्टिवता के क्षेत्र में काम करने के लिए समझाया। इस बारे में हॉन ने लिखाः ''मेरे वहां रहने के अंतिम समय के दौरान रैम्जे ने मुझसे मेरे भविष्य की योजनाओं के बारे में पूछा । मैंने उन्हें वायरब्रिज में काले एंड कंपनी में मिलने वाली संभावित नौकरी के बारे में बताया। रैम्जे ने मुझसे कहा कि मुझे उद्योग (के क्षेत्र) में नहीं जाना चाहिए – आखिर मैंने एक नए रेडियोएक्टिव तत्व (रेडियोथोरियम) की खोज जो की थी। उन्होंने यह भी कहा कि मुझे रेडियोएक्टिवता, जिसका निश्चित रूप से महान भविष्य था, के क्षेत्र में ही टिके रहना चाहिए। उन्होंने मुझे बर्लिन, जहां बड़े-बड़े विश्वविद्यालय मौजूद थे, जाने की सलाह दी। उनका कहना था कि बर्लिन में ही इस नए क्षेत्र को विकसित होने का अवसर प्राप्त होगा।''

रैम्जे केवल सलाह देने तक ही नहीं रुके। उन्होंने जर्मन कार्बनिक रसायनविद एवं जैवरसायनविद् एमिल हर्मन फिशर (1852-1919), जो उन दिनों बर्लिन यूनिवर्सिटी स्थित कैमिस्ट्री के निदेशक थे, को हान को अपनी प्रयोगशाला में स्थान देने के अनुरोध के साथ संस्तुति पत्र भी लिखा। इस पत्र में रैम्जे ने लिखा, '' मैं डॉ. हान की निर्भीकता, कौशल और बिना थके काम करने के दम से काफी अचंभित हूं.. वह प्रवक्ता बनने के लिए स्वयं को योग्य सिद्ध कर पाएंगे और मेरा ऐसा मानना है कि यह अच्छा रहेगा अगर वह आपके सान्निध्य में रहते हुए ऐसा कर पाएं। ऐसे में, क्या यह संभव होगा कि वह आपकी प्रयोगशाला में दो-एक साल के लिए काम कर पाएं? वह एक अच्छे, जानकार, विश्वसनीय एवं प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं.... वह एक जर्मन हैं तथा जर्मन ही रहना चाहते हैं। रेडियोएक्टिवता संबंधी हर अन्वेषण विधियों में उन पर विश्वास किया जा सकता है। मैं जानता हूं आप अपनी प्रयोगशाला को जितना हो सके उतना भरा-पूरा एवं उत्कृष्ट बनाना चाहते हैं .... क्या हान के लिए आपके दिल में थोड़ी सी भी जगह है?'' कहना न होगा कि एमिल फिशर, जो रैम्जे के अच्छे मित्र थे, हान की सहायता करने को राजी हो गए।

एमिल हर्मान फिशर

रैम्जे ने हान को यह सुझाव भी दिया कि बर्लिन जाने से पहले उन्हें मॉन्ट्रिएल, कनाडा जाकर न्यूजीलैंड के भौतिकीविद अर्नेस्ट रदरफोर्ड (1871-1937) के साथ काम करना चाहिए। रैम्जे का मानना था कि मॉन्ट्रिएल स्थित मैकगिल यूनिवर्सिटी, जहां रदरफोर्ड काम करते थे, के अलावा और कोई स्थान नहीं जहां कोई रेडियोएक्टिवता के बारे में इतना कुछ ज्ञान प्राप्त कर सके। हान के बारे में संस्तुति देते हुए रैम्जे ने लिखाः ''हान एक बढ़िया सहकर्मी हैं और उन्होंने प्रशंसनीय कार्य किया है। मुझे विश्वास है कि आपको उनके साथ काम करने में आनंद आएगा''। रदरफोर्ड ने हान को अपनी प्रयोगशाला में काम करने का अवसर प्रदान किया। हान ने मॉन्ट्रिएल में सितंबर 1905 से लेकर सन् 1906 के पूर्वार्ध तक कार्य किया। मॉन्ट्रिएल में काम करते हुए हान ने थोरियम-सी (बाद में पोलोनियम-212 के रूप में जिसकी पहचान हुई), रेडियम-डी (बाद में लेड-210 के रूप में जिसकी पहचान हुई) तथा रेडियोएक्टिनियम (बाद में थोरियन-227 के रूप में जिसकी पहचान हुई) की खोज की। उन्होंने रेडियोथोरियम यानी वह नया पदार्थ जिसकी खोज उन्होंने लंदन में रैम्जे की प्रयोगशाला में की थी, से उत्सर्जित होने वाली एल्फा किरणों पर भी अनुसंधान किया।

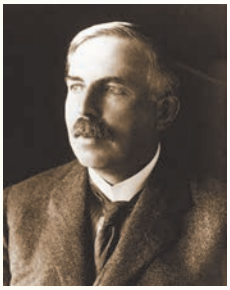
अर्नेस्ट रदरफोर्ड

मॉन्ट्रिएल से लौटने के बाद हान ने बर्लिन यूनिवर्सिटी के कैमिकल इंस्टिट्यूट, जिसके एमिल फिशर निदेशक थे तथा जिन्हें हान के बारे में रैम्जे ने संस्तुति भेजी थी, में काम करना आरंभ किया। फिसर ने हान को पूर्व में बढ़ई की दुकान रह चुके एक स्थान को प्रयोगशाला के रूप में काम करने के लिए उपलब्ध कराया। हान को इसी इस्तेमाल में न आने वाले स्थान को एक कामचलाऊ प्रयोगशाला के रूप में परिवर्तित करना था। फिर भी अत्यंत पुराने उपकरण पर काम करते हुए हान ने बहुत कम समय के अंदर ही रेडियम के समस्थानिक मैसोथोरियम की खोज की। वर्ष 1907 के वसंत काल तक हान ने विश्वविद्यालय प्रवक्ता के रूप में स्वयं को योग्य सिद्ध कर दिया था। वर्ष 1907 के अंत में उनके साथ काम करने के लिए वियना से लिजे माइटनर आ जुड़ीं। उनका यह पारस्परिक सहयोग तीस वर्षों से भी अधिक समय तक चला। बर्लिन यूनिवर्सिटी में पांच वर्ष इकट्ठे काम करने के बाद दोनों बर्लिन-देहलन में नव स्थापित कैसर विल्हेल्म इंस्टिट्यूट ऑफ केमिस्ट्री में चले गए, जहां हान रेडियोरसायन के एक छोटे मगर स्वतंत्र प्रभाग के अध्यक्ष बन गए।

सन् 1904 से लेकर आगे हान का समस्त अनुसंधान कार्य केवल रेडियोएक्टिव तत्वों एवं उनके क्षय उत्पादों पर पूर्णतया समर्पित था। प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) के दौरान हान और माइटनर दोनों को ही सैनिक सेवाओं में जुटना पड़ा। हान रसायनिक युद्ध के विशेषज्ञ बने तथा सभी यूरोपीय युद्ध मोर्चों पर उन्होंने अपनी सेवाएं प्रदान कीं। माइटनर ने नर्स के रूप में अपनी सेवाएं दीं।

लिजे माइटनर

युद्ध समाप्त होने पर उन्होंने साथ किए जाने वाले अनुसंधान को दोबारा आरंभ किया। उनका सबसे जाना-माना अनुसंधान न्यूट्रॉनों द्वारा यूरेनियम एवं थोरियम का किरणन था। सन् 1934 से हान की इटली मूल के अमेरिकी भौतिकीविद एनरिको फर्मी (1901-1954), जिन्होंने यह प्रदर्शित किया था कि जब सबसे भारी (प्राकृतिक) तत्व यूरेनियम पर मंद न्यूट्रॉनों की बमबारी की जाती है तो अनेक रेडियोएक्टिव उत्पाद उत्पन्न होते हैं, के कार्य में रुचि पैदा हुई। फर्मी की यह धारणा थी कि ये उत्पाद यूरेनियम से मिलते-जुलते कृत्रिम तत्व थे। हान न्यूट्रॉनों द्वारा बमबारी किए जाने वाले यूरेनियम के व्यवहार से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने माइटनर के साथ मिलकर इस कार्य को आगे बढ़ाया। बाद में हान के शोध छात्र फ्रिट्ज स्ट्रॉसमैन भी दोनों के साथ आ जुड़े।

न्यूट्रॉनों से यूरेनियम की बमबारी करने पर उन्हें रेडियम के कुछ समस्थानिकों के बनने की अपेक्षा थी। लेकिन, रेडियम की जगह बेरियम को पाकर उन्हें आश्चर्य हुआ। सन् 1938 में माइटनर को जर्मनी छोड़ने को विवश होना पड़ा क्योंकि यहूदी होने के कारण उन्हें जर्मनी में रहना अब असुरक्षित लग रहा था। वह जर्मनी छोड़कर हॉलैंड के लिए रवाना हुईं लेकिन अंततः वह स्टॉकहोम, स्वीडन जाकर बस गईं। हान को प्राप्त परिणाम की व्याख्या करने में बहुत कठिनाई हुई क्योंकि आवर्त सारणी में यूरेनियम की तुलना

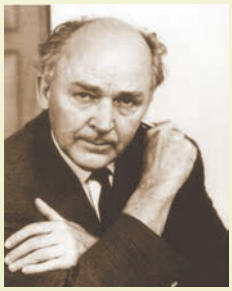
फ्रिट्ज स्ट्रॉसमैन

में बेरियम का स्थान काफी नीचे था। अगर परिणाम सही था तो काफी परिमाण में एल्फा कणों का उत्सर्जन हुआ होगा और हान उनका संसूचन करने से कभी नहीं चूकते। लेकिन ऐसा कुछ घटित नहीं हुआ। हान के लिए यह सोच पाना बड़ा भारी लग रहा था कि न्यूट्रॉनों की बमबारी से यूरेनियम का नाभिक दो हल्के नाभिकों में विखंडित हो जाए (या फूट जाए क्योंकि इस प्रक्रिया को तब 'न्यूक्लियर बर्स्टिंग' कहते थे)। उन दिनों ऐसा सोचना लीक के एकदम विरुद्ध था क्योंकि यह ''नाभिकीय विज्ञान के समस्त पूर्व अनुभवों का खंडन करता था''

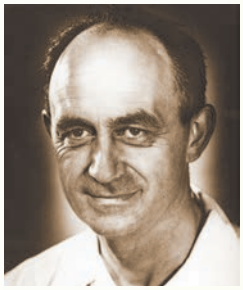

एनरिको फर्मी

लेकिन, साथ-साथ यह भी सच था कि हान को पूरा यकीन था कि बनने वाला उत्पाद रेडियम का कोई समस्थानिक न होकर बेरियम ही था। उन्हें लगा कि कुछ अति विचित्र अवश्य घटा होगा; उनके द्वारा प्राप्त परिणाम की व्याख्या केवल उस क्रियाविधि या प्रक्रिया द्वारा ही समझाई जा सकती थी कि यूरेनियम के परमाणुओं का वास्तव में काफी हल्के परमाणुओं के नाभिकों के रूप में विखंडन हुआ होगा। हान को अपनी व्याख्या पर यकीन नहीं था, इसलिए ऐसे क्रांतिकारी लगने वाले सिद्धांत को प्रकाशित करने पर उनकी खिल्ली उड़ने का खतरा था। बावजूद इसके उन्होंने स्ट्रासमैन के साथ एक संयुक्त शोध पत्र बनाकर उसे शीघ्रता से प्रकाशित होने के लिए भेज दिया। लेकिन, हान अब भी आश्वस्त नहीं थे कि उनके द्वारा प्राप्त परिणाम पर विश्वास कर पाना किसी के लिए भी विवेकपूर्ण होगा। इस बारे में हान ने बाद में लिखा, ''पांडुलिपि को भेजने के बाद भी सब कुछ मुझे इतना असंभाव्य सा लगा कि मैं उन सभी भेजे दस्तावेजों को वापस पाना चाहता था।'' लेकिन उनकी पूर्व सहयोगी माइटनर, जो उन दिनों स्वीडन में थीं, और अस्ट्रिया मूल के ब्रिटिश भौतिकीविद ऑटो रॉबार्ट फ्रिश (1904-1979), जो माइटनर के भतीजे थे, ने आवश्यक गणनाएं कर हान और स्ट्रॉसमैन द्वारा प्राप्त परिणाम की समुचित व्याख्या के लिए सैद्धांतिक आधार प्रस्तुत किया। उन्होंने इस प्रक्रिया को 'नाभिकीय विखंडन' नाम दिया। जनवरी 1939 में इसकी घोषणा की गई।

ऑटो रॉबर्ट फ्रिश

नाभियकीय विखंडन की खोज रसायनविदों और नाभिकीय भौतिकीविदों के संयुक्त प्रयासों से ही संभव हुई। जैसा कि पीटर जे. वैस्टविक ने इस बारे में अपनी टिप्पणी दी थीः ''भौतिकीविदों एवं रसायनविदों दोनों ने ही समान रूप से नाभिकीय विखंडन के महत्व को, जनवरी 1939 में इसकी घोषणा के बाद, पहचाना था; तथा दोनों ही विषयों के वैज्ञानिक ने द्वितीय विश्व युद्ध और उसके बाद परमाणु ऊर्जा के सैनिक एवं औद्योगिक अनुप्रयोगों में केंद्रीय भूमिका निभाई। इस खोज के लिए विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों के बीच सहयोग की आवश्यकता थी; और यह सहयोग हान के संस्थान में ही संभव था, जो इसकी व्याख्या करता है कि क्यों भौतिकीविदों को अकेले ही इस प्रभाव को समझाने में सफलता नहीं मिली। नाभिकीय विखंडन भौतिकी और रसायन विज्ञान के उभयनिष्ठ क्षेत्र नाभिकीय विज्ञान में इनकी अंतःक्रिया का ज्वलंत उदाहरण है; रदरफोर्ड को प्रारंभ में ही नोबेल पुरस्कार का मिलना सन् 1930 के दशक में अंजाम दिये जाने वाले नाभिकीय विज्ञान के क्षेत्र में भौतिकी और रसायन विज्ञान के बीच विभेद करने में नोबेल समितियों द्वारा अनुभव की गई कठिनाइयों का संकेत देता है''।

हान को सन् 1966 में स्ट्रॉसमैन और माइटनर के साथ संयुक्त रूप से प्रतिष्ठित एनरिको फर्मी पुरस्कार मिला। अनेक शैक्षणिक समितियों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा भी उन्हें सम्मान प्रदान किया गया। सन् 1946 में हान ने कैसर विल्हेल्म सोसायटी के अंतिम अध्यक्ष के रूप में अपना योगदान दिया। वह मैक्स प्लांक सोसाइटी (1948-1960) के संस्थापक अध्यक्ष भी थे। उन्होंने जर्मन विज्ञान की युद्धोत्तर पुनः स्थापना में भी सहायता की। अनेक लोग विद्वतापूर्ण उत्कृष्टता तथा व्यक्तिगत सत्यनिष्ठा के लिए हान को एक जीता-जागता मॉडल मानते थे। सन् 1960 में एक कार दुर्घटना में हान के इकलौते बेटे और उनकी पुत्रवधू का निधन हो गया। अपने जीवन के अंतिम वर्ष हान ने अपनी अशक्त पत्नी एवं पोते की देखभाल करने में बिताए। गौटिंगेन, जर्मनी में 28 जुलाई 1968 को हान की मृत्यु हुई।

हान का नाम बर्लिन स्थित हान-माइटनर इंस्टिट्यूट फॉर न्यूक्लियर फिजिक्स तथा मैज स्थित ऑटो हान इंस्टिटयूट फॉर कैमिस्ट्री में स्मृति के रूप में अंकित है। पूर्ववर्ती पश्चिम जर्मनी द्वारा विकसित प्रथम नाभिकीय पोत को ऑटो हान नाम दिया गया। सन् 1994 में इंटरनेशनल यूनियन ऑफ प्योर एंड एप्लाइड कैमिस्ट्री ने हान के नाम पर 108 परमाणु क्रमांक वाले तत्व को 'हानियम' नाम दिया।

संदर्भ

1. *100 ईयर्स विद नोबल लारियेट्स*, न्यू देलहीः एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (इंडिया) प्रा.लि., 2001.
2. *ए डिक्शनरी आफ साइंटिस्ट्स*, आक्सफोर्डः आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999.
3. *चैंबर्स बायोग्रैफिकल डिक्शनरी* (सेंटेनरी एडिशन), न्यूयार्कः चैंबर्स हेराप पब्लिशर्स लि., 1997.
4. शेया, विलियम आर. (ए.)., *आटो हान एंड द राइज आफ न्यूक्लियर फिजिक्स*, डोरद्रेटः डी. रीडेल पब्लिशिंग कम्पनी, 1983.
5. *द कैम्ब्रिज डिक्शनरी आफ साइंटिस्ट्स* (सेकंड एडिशन), कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2002.
6. *आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी आफ साइंस*, आक्सफोर्डः आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999.
7. वेस्तविक, पिटरजे., "न्यूक्लियर फिजिक्स एंड न्यूक्लियर केमिस्ट्री" इनजे. एल. हिलब्रान (ए.), द आक्सफोर्ड कंपनियन टू द हिस्ट्री आफ माडर्न साइंस, आक्सफोर्डः आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003.
8. इंटरनेट पर उपलब्ध स्रोत।

(प्रस्तुत आलेख वर्तमान में उपलब्ध ऑटो हान के जीवन एवं कार्य से संबंधित महत्वपूर्ण बिंदुओं पर एक लोकप्रिय ढंग का प्रस्तुतिकरण है। इस आलेख का उद्देश्य नई पीढ़ी को हान के बारे में अधिक जानकारी उपलब्ध कराना है। लेखक ने इस आलेख के लेखन में जिन स्रोतों का सहारा लिया है उनका उल्लेख कर दिया है। लेकिन, इंटरनेट पर अनगिनत स्रोत उपलब्ध हैं, अतः उन्हें अलग से सूचीबद्ध नहीं किया गया है। इस लेख को तैयार करने में जिन लेखकों की कृतियों से योगदान मिला, लेखक उनके प्रति आभारी है।)

(अनुवादः आभास मुखर्जी) ■

विज्ञान प्रसार वेबसाइट

विज्ञान प्रसार के प्रकाशनों को ऑनलाइन प्राप्त करने के लिए वेबसाइट के डिजिटल लाइब्रेरी भाग पर रजिस्टर करें। आप विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संबंधी प्रश्नों एवं उनके हल के लिए विचार-विमर्श फोरम का भी उपयोग कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी आधारित वीडियो, विज्ञान रेडियो धारावाहिक, ऑनलाइन विज्ञान क्विज, गतिविधि प्रयोगों एवं अन्य कार्यक्रमों को जानने के लिए देखें www.vigyanprasar.gov.in

अपनी आंखों को स्वस्थ रखें

अनामिका चौहान
ई-मेल: anamikachauhan.1615@gmail.com

देखने के लिए आंखें शरीर का अकेला अंग हैं, जो आस-पास के पर्यावरण से प्रकाश का पता लगाकर उसे एकत्र करती हैं। संग्रहीत प्रकाश का पता रेटिना द्वारा लगाया जाता है। रेटिना दो प्रकार की दृष्टि कोशिकाओं से बना होता है: रॉड जो कम रोशनी में कार्य करती हैं और रंग के प्रति संवेदनशील नहीं होती हैं तथा कोन (जिनके लिए तेज़ रोशनी चाहिए और यह रंग के प्रति संवेदनशील होती हैं)।

यह अत्यावश्यक दृष्टि-अंग देखने की शक्ति प्रदान करते हुए मनुष्य के शरीर में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मनुष्य की आंख कम या तेज़ रोशनी में देखने में सक्षम है, लेकिन यह प्रकाश की पूर्ण अनुपस्थिति में वस्तु को नहीं देख पाती हैं। हमारी आंखें हमें चलने, पढ़ने, टीवी देखने, कंप्यूटर पर काम करने आदि जैसी लगभग प्रत्येक गतिविधि में हमारी सहायता करती हैं, और सीखने, संचार करने, कार्य करने तथा जीवन गुणवत्ता में सुधार करने में निर्णायक भूमिका निभाती है। यह महत्त्वपूर्ण अंग हमारे जागने के समय के दौरान लगभग बिना रुके कार्य करता है। गैर-मौखिक संचार के कई रूप आंखों से आते हैं और ये एक व्यक्ति की मनोदशा परिलक्षित कर सकती हैं और साथ ही हमारे स्वास्थ्य एवं कुशलता को भी परिलक्षित करती हैं।

आंखों की देखभाल किसी उम्र तक सीमित नहीं होती है; बल्कि यह तो जीवनभर अनिवार्य होती है। हमारी खान-पान की आदतें हमारी आंखों की सुरक्षा का एक महत्त्वपूर्ण कारक हैं। भोजन में विभिन्न पोषक-तत्वों, जैसे कि कैरोटीन, ल्यूटीन, जिंक, और विटामिन सी, आदि को आंखों के स्वास्थ्य के लिए अच्छा माना जाता है और ये उम्र के साथ दृष्टि संबंधी कई समस्याओं से निजात पाने में भी लाभदायक होते हैं। पालक, गोभी, पत्तागोभी, सैमैन व टूना (मछलियों के प्रकार) एवं अन्य तैलीय मछलियां, अंडे, मटर, फलियों सहित हरी सब्जियों एवं अन्य गैर-मांस प्रोटीन स्रोत, संतरे एवं अन्य रसदार फल एवं जूस आदि से भरपूर आहार नियमित रूप से लेना भी आंखों को स्वस्थ रखने में लाभदायक होता है।

स्वस्थ आंखों के लिए स्वास्थ्यप्रद भोजन

स्वस्थ आंखों के लिए आहार

हृदय के लिए जिस आहार को स्वास्थ्यवर्द्धक बताया जाता है, वह आंखों के लिए भी अच्छा माना जाता है। क्योंकि ऐसे आहार में ट्रांस-फैट एवं सैचुरेटेड फैट की मात्रा कम होती है, जो आंखों की रक्त-वाहिकाओं को स्वस्थ रखता है। विटामिन-सी, प्रतिऑक्सीकारक, जिंक, बीटा-कैरोटीन और विटामिन-ई को उम्र संबंधी चिह्नित अपकर्षण (आंखों में होने वाला एक रोग, जिसमें हमारी दृष्टि धुंधली हो जाती है और इससे अंधापन हो सकता है) को रोकने में लाभदायक माना जाता है। स्वस्थ आंखों के लिए कैरोटीन के अतिरिक्त भी कई अन्य विटामिन एवं खनिज अनिवार्य होते हैं। ट्रांसफैट से भरपूर आहार लेने से उच्च रक्तचाप हो सकता है, जो रेटिना की रक्त-वाहिकाओं को नष्ट कर सकता है। स्वस्थ आंखों के लिए ट्रांसफैट से भरपूर आहार जैसे कि फ्रेंच फ्राई, तला हुआ चिकन, डोनट, बिस्किट, पेस्ट्री और क्रैकर सरीखे तले हुए खाद्य-पदार्थों से परहेज रखना चाहिए।

मोबाइल फोन (बांये) और लैपटॉप (दाहिने) पर खेलने का बच्चों की आंखों पर बुरा असर पड़ सकता है।

धूम्रपान और आंखों का स्वास्थ्य

धूम्रपान से मोतियाबिंद होना, दृक् तंत्रिका का नष्ट होना, और चिह्नित अपकर्षण होना प्रायः सिद्ध हो चुका है। धूम्रपान छोड़ना स्वस्थ आंखों के लिए फायदेमंद रहता है। आंखों को सूर्य के प्रकाश के प्रभाव से बचाने के लिए उपयुक्त चश्मों का प्रयोग आवश्यक है, जिससे आंखों को परा-बैंगनी किरणों के प्रभाव से बचाया जा सके।

कॉस्मेटिक्स एवं आंखों का स्वास्थ्य

आंखों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अनुपयुक्त सौन्दर्य प्रसाधन हानिकारक बैक्टीरिया को बढ़ावा देते हैं, जिससे आंखों में एलर्जी, शुष्कता और संक्रमण हो सकता है। आंखों में संक्रमण के जोखिम को कम करने के लिए प्रत्येक तीन से छह माह के समयांतराल के पश्चात कॉस्मेटिक को बदलते रहना चाहिए। और एक-दूसरे के संक्रमण से बचने के लिए इन्हें किसी अन्य व्यक्ति के साथ साझा नहीं करना चाहिए। कॉस्मेटिक उपकरण और ब्रश आदि को गर्म पानी या साबुन से धोना चाहिए, क्योंकि कॉस्मेटिक उपकरण बैक्टीरिया एवं रोगाणुओं के प्रजनन के केंद्र का कार्य कर सकते हैं। आंखों के सौन्दर्य प्रसाधनों को आर्द्रता एवं नमी से बचाने के लिए उचित ढंग से भंडारित करना चाहिए।

इलेक्ट्रॉनिक गैजेट और आंखों का स्वास्थ्य

अधिकांश लोग लैपटॉप, मोबाइल फ़ोन, टेबलेट, कंप्यूटर गेम्स, टीवी सरीखे इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स का प्रयोग करते हैं। ये सभी गैजेट्स हमारी दृष्टि को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। इन गैजेट्स का अत्यधिक प्रयोग हमारे रोजमर्रा के जीवन को तो आसान बनाता है, लेकिन ये हमारे शरीर, विशेषतः हमारी आंखों को हानि पहुंचाते हैं। इलेक्ट्रॉनिक गैजेट्स को यदि सही तरीके से प्रयोग किया जाए तो यह हमारे लिए वरदान हो सकते हैं, लेकिन यदि इन्हें जरूरत से ज्यादा प्रयोग किया जाए तो ये हमारी देखने की शक्ति को प्रभावित कर सकते हैं। कई अध्ययनों में यह सामने आया है कि मोबाइल फ़ोन के अत्यधिक प्रयोग से भेंगेपन और तिरछा-देखने की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। भेंगेपन की स्थिति अधिकांशतः शिशुओं में पाई जाती है, लेकिन कभी-कभार अचानक बच्चों में भी यह विकार उत्पन्न हो जाता है। कंप्यूटर का प्रयोग भी बच्चों की बढ़ती उम्र के दौरान हानिकारक होता है और इससे कंप्यूटर विजन सिंड्रोम यानी कंप्यूटर दृष्टि संलक्षण (कंप्यूटर पर लगातार बिना

शेष पृष्ठ 12 पर

फीनॉल: पर्यावरण के लिए एक गंभीर खतरा

आलोक पटेल
ई-मेल: biotechalok@gmail.com

पर्यावरण प्रदूषण पृथ्वी पर मानव समेत समस्त जीवों के लिए एक बढ़ता खतरा है। विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों में, जल प्रदूषण भी एक गंभीर खतरा है क्योंकि 'जल ही जीवन' है। पृथ्वी पर 0.36% से भी कम स्वच्छ जल मानव के उपभोग और उपयोग के लिए उपलब्ध है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की रिपोर्ट के अनुसार लगभग 21 प्रतिशत संक्रामक रोग प्रदूषित जल के कारण फैलते हैं।

जल प्राकृतिक कारणों या मानवीय गतिविधियों के कारण प्रदूषित होता है। कृषि प्रक्रियाओं में रासायनिक उर्वरकों और कीटनाशकों का उपयोग और पैट्रोरासायनिक रिफाइनरियों, पल्प एवं पेपर मिलों से निर्मुक्त बहिस्राव जल प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं। इन औद्योगिक बहिस्रावों में विविध किस्मों के अपक्षीणक और गैरअपक्षीणक कार्बनिक विषैले रसायन जैसे कि फीनॉल, क्लोरोफीनॉल, क्रिसॉल, ब्यूटाइल फीनॉल और विषैली धातुवें जैसे कि सीसा, पारा, क्रोमियम, मैंगनीज, लौह, कोबाल्ट, निकिल, तांबा, जिंक आदि होते हैं जिनमें डब्ल्यूएचओ की रिपोर्ट के अनुसार फीनॉल एक प्रमुख कार्बनिक प्रदूषक है। फीनॉल से भरे विषैले बहिस्रावों के उपभोग से शहरी बच्चों में विकृतियां, तंत्रिका रोग, और म्यूटाजेनिक परिवर्तन हो जाते हैं। इसलिए फीनॉल युक्त व्यर्थ जल का उपचार, सभी प्रकार के जीव प्ररूपों के जीवन के लिए आवश्यक है। इन बहिस्रावों के उपचार के लिए अनेक प्रकार की भौतरासायनिक विधियां उपलब्ध हैं। फीनॉल युक्त बहिस्रावों के ये उपचार महंगी कीमत वाले, ऊर्जा खपाऊ और विषैले रसायनों का प्रयोग करने वाले होते है, इसलिए जैविक विधियों को ही सबसे अधिक महत्व दिया जाता है।

फीनॉल का महत्व

फीनॉल एक सफेद रंग का एरोमैटिक यौगिक होता है जिसमें एक हाइड्रॉक्सिल ग्रुप छः सदस्यीय एरोमैटिक रिंग संरचना से जुड़ा होता है। इसे बहुत से नामों से नामित किया गया है जैसे मोनोहाइड्रॉक्सिबेंजीन, मोनोफीनॉल, कार्बोलिक अम्ल, बेंजाफीनॉल, एसिडमफीनाइलिकम, आदि। यह हल्का सा अम्लीय यौगिक होता है और पानी में सीमित घुलनशीलता (8.3 ग्राम/100 मिली) दिखाता है। यह प्राकृतिक रूप से पाए जाने के साथ साथ निर्मित रसायनों के रूप में भी मिलता है। अत्यंत विषालु यौगिक होने के बावजूद आजकल, फीनॉल और इसके व्युत्पन्नों का विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है (सारणी 1)।

फीनॉल के हानिकारक प्रभाव

फीनॉल का सभी प्रकार के जीव प्रारूपों पर विषैला प्रभाव होता है। यह अभिलिखित है कि एक ग्राम फीनॉल मानव के लिए मृत्युकारी होता है। इसके विषैले और हानिकारक प्रभावों के कारण, पेय जल में फीनॉल सान्द्रता नियंत्रण के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने सीमा स्तर 1 मिग्रा/ली निर्धारित की है और इसे यूएस पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी द्वारा प्रमुख प्रदूषक के रूप में अभिसूचित किया गया है। फीनॉल और उसके व्युत्पन्नों को घातक पदार्थों के रूप में वर्गीकृत किया गया है। फीनॉल के दीर्घ अवधि तक अंतर्ग्रहण से जठरआंत्रीय क्षोभ, परिवर्धित यकृत, त्वचा प्रदाह, नेक्रोसिस (शारीरिक ऊतकों की मृत्यु), जठरआंत्रीय विक्षोभ और ट्यूमर बढ़ाने वाले गुण उत्पन्न होते हैं जबकि उसके संपर्क में आने का परिणाम हृदय का ठीक से काम न करना और पेशी में कमजोरी होना है।

सारणी 1: विभिन्न क्षेत्रों में फीनॉल के अनुप्रयोग

औद्योगिक उपयोग	डाइयों, रोशनाइयों, वार्निश, जंगरोधी उत्पादों, फोटोग्राफिक रसायनों आदि के निर्माण में
औषधीय उपयोग	एंटीसेप्टिक के रूप में, और फार्मास्यूटिकल संश्लेषण आदि के लिए बिल्डिंग ब्लॉक्स के रूप में
सौन्दर्य प्रसाधन	अनेक सौन्दर्य प्रसाधनों जैसे त्वचा का रंग हल्का करने वाली क्रीम, हेयर डाइ, सनस्क्रीन आदि के निर्माण में उपयोग किया जाता है
प्रयोगशाला में उपयोग	आण्विक जीवविज्ञान में प्रोटीनों से डीएनए और आरएनए शुद्धिकरण के लिए फीनॉल-क्लोरोफार्म मिश्रण का उपयोग

फीनॉलिक बहिस्राव के स्रोत

प्लास्टिक, फार्मास्यूटिकल, वार्निश, पेंट, कोकिंग संयंत्र, पल्प एवं पेपर मिल, और तेल एवं पैट्रोलियम रिफाइनरियों जैसे विभिन्न उद्योगों से निकलने वाले व्यर्थ जल फीनोलिक बहिस्राव के प्रमुख स्रोत हैं। जब यह व्यर्थ जल, जल ग्रहण करने वाले जलाशयों में मिल जाता है, तो 5-25 मिग्रा/ली की निम्न सान्द्रता पर भी मछलियों के लिए हानिकारक हो जाता है।

फीनॉलिक यौगिकों को दूर करने के लिए उपलब्ध विधियां

फीनॉलिक यौगिकों को दूर करने के लिए अनेक विधियां बतायी गयी हैं और इनको तीन विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है: भौतिक, रासायनिक और जैविक विधियां। सभी विधियों के अपने लाभ और हानियां होती हैं। भौतिक विधियों में मूल रूप से अवसादन, अधिशोषण और प्लवन शामिल हैं जबकि वायुमिश्रित लैगून और सूक्ष्मजैविक अपक्षयण जैविक विधियों के अंतर्गत आते हैं।

सारणी 2: औद्योगिक बहिस्रावों में फीनॉल सान्द्रता

उद्योग	फीनॉल सान्द्रता (mg/l)
फार्मास्यूटिकल्स	1,000
कोकिंग संयंत्र	28-3,900
ऑयल एव पैट्रोलियम रिफाइनरियां	2.8-1,220
पल्प और पेपर	0.1.1,600
गैस उत्पादन	4,000

अधिशोषण

अधिशोषण तकनीक में व्यर्थ जल से अकार्बनिक और कार्बनिक सूक्ष्मप्रदूषकों को दूर करने के लिए सक्रियित कार्बन का व्यापक उपयोग अधिशोषकों के रूप में किया जाता है। लेकिन पुनर्जनन की ऊंची कीमत और कार्बन फाइन्स बनना, इस विधि की प्रमुख कमी है। अन्य अधिशोषकों जैसे अनावेशित पॉलीमेरिक रेजिनों का भी उपयोग किया जाता है लेकिन वे फीनॉल दूर करने के लिए कम सहयोगिता दिखाते हैं। एनआयनिक रेजिन फीनॉल को आयन-एक्सचेंज क्रियाविधि के जरिए हटाते हैं। DowexXZ (प्रबल एनआयन एक्सचेंज रेजिन) और AuRIX 100 (हलका एनआयन एक्सचेंज) दो ऐसे आयन एक्सचेंज रेजिन हैं जो क्षारीय अवस्थाओं में अधिकतम फीनॉल निराकरण दिखाते हैं। फीनॉल निराकरण की अन्य विधियां हैं विलायकों और अंतर्वेशित रेजिन आदि के साथ डायलिसिस, ऑक्सीकरण और निष्कर्षण।

रासायनिक विधियां

रासायनिक विधियों में शामिल हैं – आसवन, स्कंदन, विभिन्न विलायकों के उपयोग द्वारा द्रव-द्रव निष्कर्षण, मेम्ब्रेन विलायक निष्कर्षण, निस्यंदन और अवक्षेपण, आदि।

फीनॉल के उपचार के लिए भौतरासायनिक विधियों की सीमाएं

- अत्यंत महंगी, आर्थिक रूप से उपयुक्त नहीं
- अनचाहे उपोत्पादों का बनना
- फीनॉल का पूरी तरह निराकरण संभव नहीं होता
- रसायनों और विद्युत की अधिक आवश्यकता

इन सीमाओं को ध्यान में रखते हुए फीनॉल युक्त व्यर्थ जल के उपचार के लिए जैविक विधि सबसे अधिक महत्वपूर्ण विधि है।

जैविक विधियां

जैविक विधि में सूक्ष्मजीवों की सहायता से फीनॉल का निराकरण किया जाता है। अनेक सूक्ष्मजीव जैसे कि जीवाणु, कवक और माइक्रोशैवाल में फीनॉल को अपनी वृद्धि के लिए कार्बन स्रोत के रूप में उपयोग करने की क्षमता होती है। ये सूक्ष्मजीव फीनॉल को या तो सूक्ष्मजैविक उपापचय द्वारा अपक्षयित कर देते हैं या फीनॉल आक्सीकरण-एंजाइम की सहायता से जैविक ऑक्सीकरण के जरिए अपक्षयित कर देते हैं। जैविक विधि में जटिल यौगिक का पूरी तरह सरल यौगिकों में खनिजीकरण हो जाता है।

जैवअपक्षीणन के लाभ

जैवअपक्षीणन एक सस्ती विधि है जिसमें हानिकारक उपोत्पाद नहीं बनते और यह विधि पूरी तरह विषालु सीमा के नीचे तक फीनॉल को दूर कर देती है।

सारणी 3. सूक्ष्मजीव और उनकी फीनॉल अपक्षीणक क्षमताएं

क्रम संख्या	सूक्ष्मजीव	फीनॉलिक प्रदूषण का स्रोत	फीनॉल निराकरण (मिग्रा/ली)
1	*बेसिलस सीरिअस* (जीवाणु)	कोकिंग उद्योग का व्यर्थ जल	800
2	*एसीनेटोबेक्टर* (जीवाणु)	कोयला उद्योग का व्यर्थ जल	1,200
3	*रोडोकोकस ओपेकस* (जीवाणु)	क्लोरोबेंजीन संदूषित मृदा	1,200
4	*एसीनेटोबेक्टर* (जीवाणु)	वायवीय कण	1,000
5	*स्फीरोबेक्टर* (जीवाणु)	कोकिंग संयंत्र में सक्रियित पंक	2,000
6	*एन्टीरोबेक्टर* (जीवाणु)	कॉर्क निर्माण का व्यर्थजल	941
7	*थर्मोएनीरोबेक्टिरीयम थर्मोसैकेरोलिटिकम* (जीवाणु)	पाम ऑयल मिल बहिस्राव	1,000
8	*स्यूडोमोनास प्रजाति* (जीवाणु)	अस्पताल व्यर्थ वाली संदूषित मृदा	1,000
9	*एल्केलिजीन्स* (जीवाणु)	कोक कंपनी का व्यर्थ जल	1,200
10	*पेइसिलोमाइसीज वेरिओटाइ* (कवक)	सक्रियित पंक	1,800
11	*एस्परजिलस नाइजर* (कवक)	कागज निर्माण का व्यर्थ	250
12	*एस्परजिलस फ्लेवस* (कवक)	वर्कशॉप की प्रदूषित मिट्टी	1,000
13	*ट्राइकोस्पोरॉन मल्टीस्पोरम* (यीस्ट)	कृषि क्षेत्र	200
14	*सैकेरोमाइसीज सेरेवीसी* (यीस्ट)	लैंडफिल क्षेत्र की मृदा	800
15	*केन्डिडा ट्रॉपिकेलिस* (यीस्ट)	रसायन मिश्रित मृदा	1,000

फीनॉल अपक्षयकारी सूक्ष्मजीव

यद्यपि फीनॉल सूक्ष्मजीवों के जीवन के लिए विषालु होता है, जीवाणु जैसे कि *एसिनेटोबेक्टर* प्रजाति, *बेसिलस* प्रजाति, *एक्रोमोबेक्टर* प्रजाति, *स्यूडोमोनास प्यूटिडा, स्यूडोमोनास एरूजिनोसा* (1,200 मिग्रा/ली तक) और कवक जैसे *किकोरिअस वर्सीकलर, रलस्टोनिया* उपप्रजाति, और *फीनेरोकीटेक्राइसो स्पोरियम* में फीनॉल को अपक्षीणित करने की क्षमता होती है। यीस्ट की कुछ तेल-प्रचुर जातियों जैसे कि *ट्राइकोस्पोरॉन* प्रजाति में फीनॉल को अपक्षयित करने (1,000 मिग्रा/ली से अधिक) की क्षमता होती है।

निष्कर्ष

विश्व भर में हुए औद्योगिक विकास को, चारों ओर के पर्यावरण में अनेक प्रकार के व्यर्थ उत्पादों और बहिस्रावों के विसर्जन के कारण पर्यावरण में ह्रास से संबंधित गंभीर खतरे के रूप में जाना जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, फीनॉल इन उद्योगों द्वारा निर्मुक्त सबसे विषैले आम पर्यावरण प्रदूषकों में आता है। औद्योगिक बहिस्रावों से फीनॉल का निराकरण पर्यावरण की सुरक्षा के लिए आवश्यक है। भौतिक-रासायनिक विधियों को आमतौर पर इसके लिए प्रयोग किया जाता है, लेकिन खर्चीलापन और प्रसंस्करण के दौरान खतरनाक मेटाबोलाइटों का उत्पादन, इन विधियों की प्रमुख समस्या है। इस चुनौती का सामना करने के लिए, विभिन्न सूक्ष्मजीव जैसे कि तेल प्रचुर यीस्ट, फीनॉल के अपक्षय और साथ ही उच्च गुणवत्ता के जैवडीजल के उत्पादन के लिए बेहतर विकल्प हैं।

आलोक पटेल, आण्विक माइक्रोबायोलॉजी प्रयोगशाला, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, आईआईटी, रुड़की में एक शोधार्थी (एसआरएफ) हैं।

(अनुवादः डॉ. विनीता सिंघल) ■

चिकित्सा विज्ञान में अकस्मात हुई खोजें

अनिर्वाण रॉय
ई-मेल: anirbanroy247@gmail.com

भूमिका

जब प्राचीन यूनानी वैज्ञानिक आर्किमीडीज ने उत्प्लावकता यानी वह सिद्धांत जो इसकी व्याख्या करता है कि वस्तुएं जल में क्यों तैरती हैं, की खोज की थी तब वह ''यूरेका!'' कह कर चिल्लाए थे। यूरेका का शाब्दिक अर्थ है ''मैने इसे ढूंढ लिया है'', तथा विज्ञान का उद्देश्य हमारे आसपास की दुनिया में होने वाली घटनाओं की व्याख्याएं ढूंढना है। यह संसार कैसे कार्य करता है, विज्ञान इसी की यथातथ्य एवं औचित्यपूर्ण खोज है। सूक्ष्मतम अवपरमाण्विक कण से लेकर सभी जीवित वस्तुओं तथा ब्रह्मांड तक विज्ञान की व्याप्ति अनंत एवं अपरिमेय है।

विज्ञान जीवन का एक ढंग और तौर-तरीका है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमें विधा की स्थिति से समझ की स्थिति, जिसे पूर्वानुमानित किया जा सकता है तथा जो विश्वसनीय है, की ओर ले जाती है, आज जो वैज्ञानिक ज्ञान हमारे पास है वह सदियों से उठाए गए प्रश्नों, शोध एवं अवलोकन के साथ-साथ अनेक प्रखर मस्तिष्कों की प्रेरणा का ही परिणाम है। तथ्यपरक वैज्ञानिक विधि के पूर्ण रूप से विकसित होने से पहले लोगों ने मुख्यतः अनुमान के आधार पर संसार संबंधी खोजें की तथा प्रौद्योगिकियों का विकास किया और कभी-कभी प्रकृति की सदिच्छा से संयोगवश भी कुछ खोजें हुईं! है न आश्चर्यजनक! नीचे कुछ ऐसे ही उदाहरण प्रस्तुत हैं।

एनेस्थीसिया

एक गर्भवती महिला, जो सामान्य रूप से प्रसव करने में असमर्थ थी, ने स्त्रीरोग विशेषज्ञ यानी गाइनाकॉलॉजिस्ट से एक बेहतर विकल्प की मांग की। स्त्रीरोग विशेषज्ञ ने हंसकर उस महिला को आश्वासन दिया कि वह सीजेरियन सेक्शन यानी शल्य प्रसव (एक शल्य विधि जिसमें माता के उदर एवं गर्भाशय में एक या अधिक चीरे लगाकर प्रसव कराया जाता है) द्वारा बच्चे को जन्म देगी। महिला ने फिर से अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि वह चीरा लगाए जाने की पीड़ा को झेल नहीं पाएगी। स्त्रीरोग विशेषज्ञ ने महिला को दिलासा देते हुए कहा कि उसे किसी पीड़ा की अनुभूति नहीं होगी।

स्त्रीरोग विशेषज्ञ ऐसा किस आधार पर कह पाई? सीजेरियन सेक्शन के दौरान कोई पीड़ा न हो, ऐसा कैसे संभव है? चिकित्सकीय प्रक्रियाओं, जैसे कि शल्यक्रियाओं से रोगियों को बहुत पीड़ा झेलनी पड़ सकती है, यदि वे अपने होश में हों। लेकिन एनेस्थीसिया पीड़ाहीन शल्यक्रियाओं को अंजाम देना संभव बनाता है। बिना एनेस्थीसिया के रोगी को असहनीय पीड़ा झेलनी पड़ सकती है।

व्यक्ति को संवेदनहीन करने वाली एनेस्थीसिया की खोज किसने की, इस पर अभी संशय है। इस विस्मयकारी चिकित्सकीय तकनीक की संयोगवश हुई खोज के साथ अनेक नाम जुड़े हैं। एनेस्थीसिया की खोज का श्रेय क्रॉफोर्ड लॉन्ग, विलियम मॉर्टन, चार्ल्स जेक्सन तथा होरेस बेल्स को दिया जाता है। इन लोगों ने यह भांपा कि कुछ मामलों में ईथर एवं नाइट्रस ऑक्साइड (लाफिंग गैस) उन लोगों, जो इसके प्रभाव में थे, में पीड़ा को रोकने में सफल रहा।

सन् 1800 के दशक में, आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजन के लिए ईथर या नाइट्रस ऑक्साइड में से किसी को भी सांस द्वारा अपने अंदर लेना शगल में शुमार था। इन सामाजिक घटनाओं जिन्हें 'लॉफिंग पार्टीज' तथा 'ईथर फ्लोरिक्स' की संज्ञा दी जाती थी, को देख कर या इसमें भाग लेकर एनेस्थीसिया के संस्थापक चिकित्सकों ने और भी अच्छे तरीके से यह सीखा कि ये अनुभव लोगों की पीड़ा संबंधी अनुभूतियों को कैसे प्रभावित करते हैं। सन् 1844 में, होरेस वेल्स ने एक हुजूम जिसमें वह मौजूद थे, में लॉफिंग गैस के प्रभाव में एक व्यक्ति की टांग को घायल होते हुए देखा। उस व्यक्ति, जिसकी टांग से बुरी तरह खून बह रहा था, ने वेल्स को बताया कि उसे किसी पीड़ा की अनुभूति नहीं हो रही थी। इस सांयोगिक अवलोकन के बाद वेल्स ने इस यौगिक का इस्तेमाल अपना दांत उखाड़ने के लिए एक एनेस्थेटिक के रूप में करना आरंभ किया और इसमें उन्हें कोई पीड़ा नहीं सहनी पड़ती थी। इस प्रकार इन चिकित्सकों को शल्यक्रियाओं आदि के दौरान एनेस्थीसिया के प्रयोग के बारे में धीरे-धीरे समझ में आने लगा। वैल्स, मॉर्टन और जैक्सन ने नाइट्रस आक्साइड का इस्तेमाल एनेस्थीसिया के रूप में करना आरंभ किया जबकि क्रॉफोर्ड लॉन्ग ईथर का प्रयोग छोटी-मोटी शल्यक्रियाओं में करने लगे।

एक निश्चेतक यानी एनेस्थेटिक के रूप में पहचान होने से पहले नाइट्रस ऑक्साइड का इस्तेमाल एक प्रभावी प्रशांतक (ऐसी औषध जिसका प्रयोग चिंता, भय, तनाव, आक्रामकता तथा इसी तरह की मानसिक अवस्थाओं के शमन के लिए होता है) के रूप में होता था। इसके अलावा ''मूड उत्थापक'' के रूप में भी पार्टियों तथा लोगों के क्रॉस-कंट्री हुजूमों में इसका इस्तेमाल होता था। यह जोसेफ प्रीस्टले का प्रखर मस्तिष्क ही था कि जिसने एक प्रति-संत्रास (एंटि-पेनिक) एजेंट के रूप में नाइट्रस ऑक्साइड के उपयोग का पता लगाया था।

विल्हेल्म कॉनरेड रूंटगेन

ऐनेस्थीसिया की अनजाने में हुई खोज इस भूमंडल में रहने वाले सभी के लिए वरदान साबित हुई। वर्तमान काल में रोगी पीड़ाहीन शल्यक्रिया करा सकते हैं चाहे वह कितनी ही गंभीर किस्म की क्यों न हो। एनेस्थीसिया को दो मुख्य वर्गों में रखा जा सकता है: स्थानीय यानी लोकल एनेस्थीसिया छोटी-मोटी शल्यक्रियाओं में शरीर के एक सीमित हिस्से को ही सुन्न करता है जबकि क्षेत्रीय यानी रीजनल एनेस्थीसिया शरीर के एक बड़े हिस्से को सुन्न कर पीड़ा से बचाता है। सामान्य यानी जनरल एनेस्थीसिया रोगी को दवाओं के असर द्वारा बेहोशी की अवस्था में ले जाता है। जब यह अवस्था बेहद गहरी होती है तो इसका मतलब है कि रोगी किसी पीड़ा के प्रति अनुक्रिया नहीं प्रकट करेगा। यह अवस्था उसके श्वसन एवं परिसंचरण में भी परिवर्तन लाती है। जिस रोगी को जनरल एनेस्थीसिया दिया जाता है वह एक सावधानीपूर्वक नियंत्रित निश्चेतना की स्थिति में होता है।

रेडियोग्राफी

8 नवम्बर 1895 को जर्मन भौतिकीविद् विल्हेल्म कॉनरेड रूंटगेन (1845-1923) एक्स-किरणों, यानी एक उन्नत वैज्ञानिक खोज जो अदृश्य को दृश्य बनाकर चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में भविष्य में क्रांति का आगाज लाने वाली थी, को अवलोकित करने वाले पहले व्यक्ति बने। लेकिन, रूंटगेन ने अपनी इस खोज का श्रेय एक सांयोगिक घटना को देना पसंद किया जिसे बुर्जबर्ग, जर्मनी में अपनी प्रयोगशाला में विकिरण उत्पन्न करने वाली कैथोड किरणों के साथ काम करते हुए उन्होंने अवलोकित किया था। जब वह इसका परीक्षण कर रहे थे कि कैथोड किरणें कांच से होकर गुजर सकती हैं या नहीं तब अचानक पास रखे एक रसायन-लेपित स्क्रीन से निकलती दीप्ति पर उनकी नजर पड़ी। असल में, यह एक प्रतिदीप्तिशील यानी फ्लोरोसेंट पर्दा था जिस पर बेरियम प्लेटिनो सायनाइड नामक रसायन का लेप चढ़ा था, जो कैथोड किरणों के कारण दीप्ति उत्पन्न कर रहा था। इसमें असामान्य जैसी कोई बात नहीं थी, सिवाय इसके कि वह प्रतिदीप्तिशील पर्दा चारों ओर से गत्ते से ढका था।

रूंटगेन ने यह सोचा था कि मोटा गत्ता कैथोड किरणों के रूप में आने वाली अधिकांश विकिरणों को रोक देगा, लेकिन पर्दा फिर भी दीप्त था। रूंटगेन ने कैथोड किरणें उत्पन्न करने वाली विसर्जन नलिका और उस पर्दे के बीच कई अवरोधक वस्तुएं यह देखने के लिए लगाईं कि क्या पर्दा तब भी दीप्त बना रहता है। लेकिन आश्चर्य था कि पर्दा हर हालत में दीप्ति उत्पन्न कर रहा था। अंततः अपनी हथेली

को उन्होंने ट्यूब के सामने रखा तो अपनी हथेली की हड्डियों की परछाईं उन्हें स्क्रीन पर दिखाई दी। रूंटगेन ने एक्स-किरणों की खोज कर ली थी। उन्होंने चिकित्सा विज्ञान में इसके अनेक उपयोग भी प्रस्तावित किए थे। उन्होंने इन विकिरणों को एक्स-किरणों की संज्ञा दी क्योंकि इनके गुणधर्मों एवं प्रकृति के बारे में कोई निश्चित जानकारी उन्हें नहीं थी। एक्स-किरणों की खोज के कुछ ही दिनों बाद 22 दिसंबर 1895 को रूंटगेन ने अपनी पत्नी पार्था के बाएं हाथ का विकिरण चित्र यानी रेडियोग्राफ लिया।

एक्स-किरणों की खोज के बाद इसकी पुष्टि हो गई कि ये किरणें वास्तव में विद्युत-चुंबकीय तरंगें हैं जो प्रकाश तरंगों की तरह ही व्यवहार करती हैं लेकिन तरंगदैर्ध्य प्रकाश तरंगों से 1,000 गुना कम होता है। अधिकतर एक्स-किरणों के तरंगदैर्ध्य का परिसर 0.01 से 10 नैनोमीटर के बीच होता है। तत्संबंधी आवृत्ति का परिसर $3x10^{16}$ हर्ट्ज से $3x10^{19}$ हर्ट्ज के बीच तथा ऊर्जा का परिसर 100 इलेक्ट्रॉन वोल्ट (ev) से 100 किलो इलेक्ट्रॉन वोल्ट (Kev) के बीच होता है।

अपनी असाधारण खोज को और बेहतर ढंग से समझने के लिए रूंटगेन ने एक के बाद एक कई प्रयोग किए। उन्हें पता चला कि एक्स-किरणें मानव शरीर को तो वेध सकती हैं लेकिन उच्च घनत्व वाले पदार्थों जैसे कि अस्थि या लेड को नहीं वेध सकतीं तथा उनका छायाचित्र यानी फोटोग्राफ लिया जा सकता है। रूंटगेन की खोज को एक चिकित्सीय चमत्कार करार दिया गया तथा एक्स-किरणों ने बगैर चीर-फाड़ के डाक्टरों को मानव शरीर के अंदर झांकने में सक्षम बनाया। सन् 1897 में, बाल्कनयुद्ध के दौरान एक्स-किरणों का पहली बार युद्ध भूमि में इस्तेमाल घायल सैनिकों के शरीर के अंदर घुसी गोलियों तथा टूटी हड्डियों का पता लगाने में हुआ। एक एक्स-रे मशीन से एक्स-किरणें निकल कर शरीर से गुजरती हैं। किसी कम्प्यूटर या फिल्म पर इसका प्रतिबिंबन होता है। सघन संरचनाएं (जैसे कि हड्डियां) अधिकांश एक्स-किरणों को रोक लेती हैं और इस प्रकार पर्दे पर वे सफेद नजर आती हैं। धातु एवं विपर्यास माध्यम यानी कंट्रास्ट मीडिया (विशेष रंजक जिनका प्रयोग शरीर के हिस्सों को चिन्हित करने के लिए किया जाता है) भी पर्दे पर सफेद नजर आते हैं। देह की वायु भरी आंतरिक संरचनाएं काली जबकि पेशी, वसा एवं तरल धूसर शेडों के रूप में नजर आते हैं।

किस ढंग की एक्स-रे नैदानिकी होती है, यह शरीर की स्थिति पर निर्भर करता है। देह के अंगों में तनिक भी हलचल या देह के अंदर किसी धात्विक वस्तु की मौजूदगी प्रतिबिंब (इमेज) को धुंधला कर देती है। एक्स किरणों के फायदों को तो वैज्ञानिक तेजी से जान समझ रहे थे लेकिन इन विकिरणों के हानिकारक प्रभावों की उन्हें धीरे-धीरे ही समझ हो पा रही थी। आरंभ में ऐसा सोचा गया कि एक्स-किरणें मानव शरीर से प्रकाश की तरह ही बिना कोई हानि पहुंचाए गुजर जाती हैं। लेकिन, फिर कुछ ही समय के अंदर अनुसंधानकर्ता एक्स किरणों के उद्भासन से उत्पन्न जलने एवं त्वचा क्षति के मामलों की जानकारी देने लगे। थामस एडीसन के सहयोगी क्लेरेंस डैली, जिन्होंने एक्स-किरणों के साथ व्यापक रूप से काम किया था, की सन् 1904 में त्वचा कैंसर से मृत्यु हुई। डैली की हृदयविदारक मृत्यु ने कुछ वैज्ञानिकों को विकिरण के खतरों को गंभीरता से लेने के लिए विवश किया लेकिन इन खतरों की पूरी तरह से उन्हें समझ नहीं थी। सन् 1930, 1940 एवं 1950 के दशकों के दौरान अमेरिकी जूतों के स्टोर प्रतिदीप्तदर्शियों यानी फ्लोरोस्कोपों का इस्तेमाल करते थे जो एक्स-किरणों की मदद से ग्राहकों को उनके पैरों की हड्डियों को दिखाते थे, सन् 1950 के दशक में ही यह उद्घाटित हुआ कि ऐसा करना खतरे से भरा था।

रूंटगेन को अपनी खोज के लिए अनेक पुरस्कार मिले जिनमें वर्ष 1901 का भौतिकी का प्रथम नोबेल पुरस्कार भी शामिल था। विकिरण उद्भासन के मापन के लिए प्रयुक्त मात्रक को उनके सम्मान में रूंटगेन मात्रक नाम दिया गया। यह मात्रक एक्स-रे या गामा विकिरण द्वारा वायु में उत्पन्न आयनन की माप करता है। आजकल, एक्स-रे टेक्नोलॉजी का उपयोग चिकित्सा, पदार्थ विश्लेषण तथा ऐसी युक्तियों, जैसे कि हवाई अड्डों में सुरक्षा स्कैनरों में किया जाता है।

इंसुलिन

देह में रक्त-शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने वाले दुर्गाह्य पदार्थ की आकस्मिक खोज में एक कुत्ते का मूत्र बड़े काम का सिद्ध हुआ। फ्रैडरिक जी. बेंटिग, जो एक युवा कनाडाई चिकित्सक थे, तथा यूनिवर्सिटी ऑफ टोरंटो से संबद्ध प्रोफेसर जौन जे. आर. मैकलिऑड को मधुमेह की चिकित्सा में इंसुलिन को विलगित करने एवं उसके चिकित्सीय अनुप्रयोग के लिए वर्ष 1923 का शरीरक्रिया विज्ञान या चिकित्सा विज्ञान का नोबेल पुरस्कार संयुक्त रूप से प्रदान किया गया। इंसुलिन पर इनका कार्य दशकों पूर्व अटलांटिक के दूसरी ओर दो चिकित्सकों द्वारा अग्न्याशय एवं रक्त-शर्करा के स्तर के बीच के संबंध की आकस्मिक खोज पर आधारित था। सन् 1889 में, जर्मन चिकित्सक जोसेफ वॉन मेरिंग और ऑस्कर मिन्कॉस्की ने पाचन में अग्न्याशय की भूमिका के बारे में पता लगाने के लिए एक स्वस्थ कुत्ते का अग्न्याशय निकाल लिया। इसके काफी दिनों के बाद दोनों चिकित्सकों ने उस कुत्ते द्वारा त्यागे गए मूत्र के आसपास मक्खियों के एक झुंड को मंडराते देखा। मूत्र की ओर मक्खियों के आकर्षण का पता लगाने के लिए उन्होंने जब मूत्र की जाँच की तो पता चला कि कुत्ता मूत्र द्वारा शर्करा को स्रावित कर रहा था जो मधुमेह का लक्षण था। चूंकि वह कुत्ता अग्न्याशय निकाले जाने से पहले स्वस्थ था, चिकित्सकों को यह समझते देर न लगी कि अग्न्याशय निकाले जाने के कारण ही कुत्ते की मधुमेह से पीड़ित होने की यह दशा उत्पन्न हुई थी। इस प्रकार इस आकस्मिक अवलोकन द्वारा ही अग्न्याशय एवं मधुमेह के बीच के संबंध को जानने में उन्हें पहली बार सफलता मिली। बाद में की गई जाँचों द्वारा मेरिंग और मिन्कॉस्की इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्वस्थ अग्न्याशय को एक ऐसे पदार्थ को स्रावित करना चाहिए जो शरीर में शर्करा के उपापचय को नियंत्रित करता है।

हालांकि दोनों जर्मन चिकित्सकों की आकस्मिक खोज के बाद अनेक वैज्ञानिकों ने अग्न्याशय द्वारा स्रावित पदार्थ को विलगित करने का प्रयास किया लेकिन उनके ये प्रयास व्यर्थ रहे। ये बैंटिंग और मैकलिऑड ही थे जिन्होंने यह स्थापित किया कि वह विस्मयकारी पदार्थ इंसुलिन था तथा मधुमेह को नियंत्रित करने के प्रथम मूल्यवान साधन के रूप में उन्होंने इसका प्रयोग करना आरंभ किया। 30 जुलाई 1921 को बेंटिंग ने इंसुलिन हार्मोन को मधुमेह से पीड़ित एक कुत्ते में प्रविष्ट कराया। उन्होंने पाया कि यह सफलतापूर्वक कुत्ते के बढ़े हुए रुधिर ग्लूकोस स्तर को सामान्य स्तर पर ले आया और इस प्रकार उनका प्रयोग सफल सिद्ध हुआ। डायबिटीज, जिसे चिकित्सक अक्सर डायबिटीज मेलिटस कहते हैं, एक वर्ग के उपापचयी रोगों को वर्णित करता है जिसमें व्यक्ति का रुधिर ग्लूकोस (रुधिर शर्करा) का उच्च स्तर होता है। यह शरीर में इंसुलिन के अपर्याप्त उत्पादन, दैहिक कोशिकाओं के इंसुलिन के प्रति अनुक्रिया न प्रदर्शित करने या इन दोनों ही कारणें से हो सकता है। उच्च रक्त शर्करा वाले रोगी विशिष्ट समस्याओं, जैसे कि बहुमूत्रता (पॉलीयूरिया), आदि से दो चार हो सकते हैं। इंसुलिन एक हार्मोन है जो हमारे अग्न्याशय द्वारा स्रावित होता है। यह हमारे शरीर को भोजन में मौजूद कार्बोहाइड्रेटों से शर्करा (ग्लूकोस) का इस्तेमाल करने या भविष्य के लिए ग्लूकोस को शरीर में भंडारित करने में सक्षम बनाता है। इंसुलिन रुधिर शर्करा को बहुत अधिक (अतिग्लूकोसता) या बहुत कम (अवग्लूकोसता) होने से रोकता है। मधुमेह से पीड़ित रोगियों को अपने रुधिर ग्लूकोस स्तर को सामान्य बनाए रखने के लिए कृत्रिम इंसुलिन लेने की आवश्यकता होती है।

एफ. बेंटिंग

पैप स्मिअर

वर्ष 1923 में जॉर्ज निकोलस पेपेनिकोलाऊ, जो 'डॉ. पैप' के उपनाम से जाने जाते थे, ने स्त्री रजोधर्म चक्र के चलते रहने के दौरान होने वाले कोशिकीय परिवर्तनों को अवलोकित करने की उम्मीद से एक के बाद एक कई चिकित्सीय अध्ययन किए। उन्होंने जंतुओं के यौन चक्र के दौरान उनके योनिक तरलों (स्मिअर) को अवलोकित एवं उनका परीक्षण करना आंरभ किया।

मादा गिनीपिगों में सफल परीक्षण के बाद पैपेनिकोलाऊ ने कोशिकीय रूपांतरण को अवलोकित किया तथा वह स्त्रियों में अब इसकी पुष्टि करना चाहते थे। अतः स्त्रियों के योनिक तरल का अध्ययन उन्होंने

तत्संबंधी कोशिकीय परिवर्तनों को अवलोकित करने की आशा के साथ किया। लेकिन उनके लिए भाग्य ने कुछ और सोच रखा था। हुआ यूं कि पैपेनिकोलाऊ जिन स्त्रियों पर परीक्षण कर रहे थे, उनमें से एक स्त्री गर्भाशय कैंसर, जो उन दिनों स्त्रियों को व्यापक रूप से होने वाले रोगों में से एक था, से पीड़ित थी। उस कैंसर रोगी महिला के योनिक तरल से आलेपित स्लाइड को एक साधारण माइक्रोस्कोप के नीचे रख कर जब पैपेनिकोलाऊ ने परीक्षण किया तो जो उद्घाटित हुआ उससे वह भौंचक्के रह गए। उन्होंने असामान्य कैंसर कोशिकाओं एवं तेजी से बढ़ती उनकी संख्या को माइक्रोस्कोप में स्पष्ट देखा। अपनी खोज के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा, ''अपने वैज्ञानिक कॅरिअर के दौरान गर्भाशय ग्रीवा के आलेप में कैंसर कोशिकाओं का मेरा प्रथम अवलोकन मेरे बेहद रोमांचक अनुभवों में से एक था।''

पैपेनिकोलाऊ को तेजी से यह बोध हुआ कि योनिक तरल के नमूने की सरल जाँच से चिकित्सक गर्भाशय एवं अन्य कैंसरों के आरंभिक लक्षणों का पता लगा सकते हैं।

पैप स्मिअर (आलेप) ग्रीवा की जांच की एक तकनीक है जिसका प्रयोग ग्रीवा (गर्भाशय का निचला हिस्सा) में संभावित रूप से होने वाली कैंसर पूर्व की एवं कैंसरकारी प्रक्रियाओं का पता लगाने के लिए किया जाता है। जांच से प्राप्त असामान्य रिपोर्टों की अधिक प्रभावी नैदानिक विधियों द्वारा फिर से जांच की जा सकती है ताकि ग्रीवा कैंसर को बढ़ने से रोकने में मदद मिले। ग्रीवा के विवर से निकाली गई कोशिकाओं का माइक्रोस्कोप के जरिए अच्छी तरह से अवलोकन किया जाता है। एक आनुवंशिक अध्ययन के दौरान पैपेनिकोलाऊ के कैंसर कोशिकाओं के आकस्मिक अवलोकन ने तथाकथित ''पैप स्मिअर'' यानी एक सरल जांच विधि, जिसने अरबों स्त्रियों को गर्भाशय कैंसर की विध्वंसक मार से बचाया, के विशिष्ट प्रयोग की शुरुआत की। समकालीन दुनिया में सभी स्त्रियों में यह एक मानक जांच विधि है जिसने विश्वभर में ग्रीवा कैंसर से होने वाली मृत्यु दर को काफी कम कर दिया है।

पेसमेकर (प्रत्यारोपित किया जाने वाला स्पंदन जनित्र)

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण युक्तियों में से एक यानी प्रत्यारोपित किए जाने वाले हृदय पेसमेकर की आकस्मिक खोज जीवन पर्यन्त आविष्कार में जुटे रहने वाले विल्सन ग्रेटबैच नामक शख्स द्वारा हुई। सन् 1950 के दशक में, ग्रेटबैच जलसेना (नेवी) से त्याग पत्र देकर एक चिकित्सकीय अनुसंधानकर्ता के रूप में कार्य कर रहे थे। हृदय विस्पंदों को रिकॉर्ड करने के लिए वह एक दोलित्र (ऑस्सिलेटर) को समायोजित कर रहे थे, जब प्रतिरोधक बॉक्स से उन्होंने एक गलत मान के प्रतिरोधक को निकाला। जब इस गलत प्रतिरोध के साथ अपनी युक्ति को उन्होंने पुनर्समायोजित किया तो यह एक लयबद्ध वैद्युत स्पंद को उत्पन्न करने लगा जो मानव हृदय विस्पंदों से सादृश्यता रखता था। जैसा कि एक प्रखर मस्तिष्क ही सोच सकता है, उन्हें जल्दी ही यह कौंधा कि यह स्पंद उत्पन्न करने वाली युक्ति मानव हृदय की वैद्युत सक्रियता को नियंत्रित करने में सहायक हो सकती है और इस प्रकार हृदय रोगियों को स्थिर हृद् लय प्रदान कर सकती है। हृदय की अपनी स्वयं की आंतरिक वैद्युत प्रणाली होती है जो हृदय विस्पंदों की दर एवं लय का नियंत्रण एवं समन्वयन करती है। हर हृदय विस्पंद के साथ एक वैद्युत संकेत हृदय के ऊपरी सिरे से निचले सिरे की ओर यात्रा करता है। यह संकेत जैसे आगे बढ़ता है, यह हृदय को संकुचित होने एवं रुधिर को पंप करने का आदेश देता है। सामान्यतः हर वैद्युत संकेत का आरंभ कोशिकाओं के एक समूह से होता है, जिसे साइनस नोड या साइनोआर्टरियल (एस ए) नोड कहते हैं। ऊपर से नीचे की ओर बढ़ते हुए यह संकेत हृद् कोशिका की सक्रियता की काल-अवधि को नियंत्रित करते हैं। हृद्मंदता यानी ब्रेडीकार्डिया (असामान्य रूप से मंद हृदय सक्रियता) से पीड़ित रोगियों को हृदय को सही ढंग से काम करने के लिए पेसमेकर की आवश्यकता होती है। पेसमेकर हृदय विस्पंद की दर को सही स्तर पर ले आता है और इस प्रकार मस्तिष्क एवं शरीर के अन्य अंगों की ओर पर्याप्त रक्त एवं ऑक्सीजन की आपूर्ति को संभव बनाता है।

विलसन ग्रेटबैच

लेकिन एक इस्तेमाल किए जा सकने वाले पेसमेकर को डिजाइन करने में ग्रेटबैच को एक समस्या का सामना करना पड़ा; और यह समस्या पेसमेकर के साइज को लेकर थी। जिस पेसमेकर का वह विकास कर रहे थे, वह प्रत्यारोपित करने की दृष्टि से काफी बड़ा था। इसके आकार को कम करने तथा दैहिक तरलों से इसकी सुरक्षा के लिए उन्होंने दो वर्षों तक कार्य किया। 7 मई 1958 को बफैलो, संयुक्त राज्य अमेरिका स्थित वेटरन्स एडमिनिस्ट्रेशन हॉस्पिटल के सर्जनों ने यह प्रदर्शित किया कि ग्रेटबैच द्वारा विकसित पेसमेकर का एक लघु संस्करण, जो महज 2 घन इंच (32 घन सेंटीमीटर) साइज का था, एक कुत्ते के हृदय विस्पंद को नियंत्रित करने में सक्षम था। उसी वर्ष 43 वर्षीय आर्ने लार्सन प्रत्यारोपित किए जा सकने वाले पेसमेकर को लगाने वाले स्वीडन के पहले मानव रोगी बने। आर्ने की मृत्यु 86 वर्ष की उम्र में त्वचा कैंसर, जिसका पहले ही निदान हो चुका था, से हुई लेकिन एक जीवन रक्षक के रूप में पेसमेकर के महत्व को सामने लाने में वह निमित्त बने। कुछ स्रोत ऐसा भी बताते हैं कि ग्रेटबैच द्वारा विकसित प्रथम पेसमेकर को एक 77 वर्षीय हृदय रोगी में प्रत्यारोपित किया गया था जो इस युक्ति के साथ बस 18 महीने ही जीवित रहे।

आकस्मिक रूप से आविष्कृत प्रत्यारोपित किए जा सकने वाले पेसमेकर ने लोगों के जीवन की धारा ही बदल दी। ग्रेटबैच कहा करते थे, "दस में से नौ चीजें काम नहीं करेंगी। लेकिन दसवीं चीज बाकी नौ की भरपाई कर देगी।" सन् 1985 में, नेशनल सोसाइटी ऑफ प्रोफेशनल इंजीनियर्स ने उनके द्वारा विकसित पेसमेकर को पिछले 50 वर्षों की दस सबसे बड़ी इंजीनियरी उपलब्धियों में से एक माना। अपनी युक्ति में लगातार सुधार करते रहने की इच्छा से ग्रेटबैच ने बाल्टीमोर के अनुसंधानकर्ताओं द्वारा 1968 में आविष्कृत लीथियम आयोडीन बैटरी के पेटेंट अधिकार प्राप्त किए। इसने उनके द्वारा आरंभ में विकसित पेसमेकर, जिनमें जिंक-मर्क्यूरी बैटरियां लगी होती थीं और जिनकी आयु दो वर्ष या इससे भी कम थी, की एक बड़ी कमी को दूर कर दिया। लीथियम बैटरी लगे पेसमेकर एक दशक या इससे भी अधिक समय तक अपना काम अंजाम देने में सक्षम थे। पेसमेकर में जैसे-जैसे सुधार हुए, उनकी कंपनी ग्रेटबैच इंकॉरपोरेशन विश्व भर की 90 प्रतिशत पेसमेकर बैटरियों की आपूर्ति करने वाली कंपनी बनी। पेसमेकर ने लोगों की औसत आयु को हृदय की खराबी या उसके काम न करने से हुई मृत्युदर को घटाकर बढ़ा दिया। इतनी प्रसिद्धि, धन-दौलत तथा विज्ञान एवं चिकित्सा विज्ञान को दिए गए इतने व्यापक योगदान के बावजूद ग्रेटबैच एक विनम्र व्यक्ति ही रहे जिनका विश्वास था कि ईश्वर ने ही उनके द्वारा किए गए महान कार्यों को अंजाम देने में उनका पथ प्रदर्शन किया है। 350 से भी अधिक पेटेंटों के मालिक ग्रेटबैच की मृत्यु 92 वर्ष की आयु में हुई। जाते-जाते संसार के लिए जीवित रहने का एक और कारण पेसमेकर की भेंट के रूप में वह छोड़ते गए।

वियाग्रा

दवाओं को बाजार में लाने से पहले उन्हें सावधानी से किए गए कठोर परीक्षणों से होकर गुजरना पड़ता है, लेकिन वास्तविकता में उनका परीक्षण तभी शुरू होता है जब बहुत बड़ी संख्या में लोग उनका सेवन आरंभ करते हैं। इस बारे में पेट्रिक वालैंस, जो एक नामी-गिरामी औषध कंपनी के औषध खोज (ड्रग डिस्कवरी) विभाग के प्रमुख हैं, का उचित कथन है, "कई माइनों में आप अपनी दवा के बारे में इसे बाजार में उतारने के बाद उतनी ही जानकारी हासिल करते हैं जितनी कि आप पहले इसके बारे में जानते थे।" जब साइमन कैम्पबेल और डेविड राबर्ट्स नामक दो अनुसंधानकर्ताओं, जो फिजर नामक औषध कंपनी में काम करते थे, ने एक नई औषध की प्रभाविकता के बारे में अध्ययन करना आरंभ किया तो उन्हें इस बात का कोई गुमान नहीं था कि इस औषध का क्या होने वाला है। वियाग्रा नामक नई औषध की यात्रा उच्च रक्तचाप और एन्जाइना के इलाज के लिए यूके-92480 नाम से शुरू हुई थी। एन्जाइना एक हृदय रोग है जिसमें हृदय को रक्त की आपूर्ति करने वाली वाहिकाएं संकुचित हो जाती हैं। फिजर नामक औषध कंपनी किसी ऐसी दवा की खोज में थी जो इन रुधिर वाहिकाओं का इलाज कर उन्हें ठीक कर सकें। इस प्रक्रिया में यूके-92480 नामक दवा की खोज हुई, जिसे बाद में वियाग्रा नाम दिया गया। सन् 1980 के दशक के अंतिम दौर में इसे चिकित्सीय परीक्षणों में मानव रोगियों पर आजमाने के लिए तैयार

किया गया। इस दवा को परीक्षण हेतु रोगियों को दिया गया लेकिन अनुसंधानकर्ताओं ने जैसा प्रभावी इसे बताया था, यह उतना प्रभावी नहीं पाया गया।

फिजर इस दवा के आगे किए जाने वाले परीक्षणों को बंद करने ही वाली थी कि इनमें स्वेच्छा से भाग लेने वाले पुरूषों ने आकर इस दवा के असाधारण इतर प्रभाव यानी अपने शिश्न में होने वाले अत्यधिक उत्थापन के बारे में बताया। कंपनी ने अपने वैज्ञानिक क्रिस वेमैने को निष्पक्ष रूप से इस अवांछनीय इतर प्रभाव के कारणों का संधान करने का निर्देश दिया। वेमैन ने प्रयोगशाला में 'मानव' के एक मॉडल का सृजन कियां उन्होंने एक निष्क्रिय विलयन से भरे टेस्ट ट्यूबों के एक समुच्चय को लिया तथा इनमें से हर टेस्ट ट्यूब में एक नपुंसक व्यक्ति (नपुंसकता पुरुषों की एक यौन असामान्यता है जिससे पीड़ित व्यक्ति के शिश्न का उत्थापन अपनी संगिनी के साथ सहवास करते समय कम या लगभग ना के बराबर होता है) के शिश्न से लिए गए ऊतक के टुकड़ों को डाला। हर ऊतक के टुकड़े को एक बॉक्स के साथ जोड़ा गया था। एक स्विच के ऑन होने पर यह बॉक्स हर ऊतक से एक वैद्युत स्पंद को भेजता था। अति निम्न तीव्रता का यह विद्युत स्पंद किसी व्यक्ति में होने वाली यौन उत्तेजना की स्थिति की नकल करता था। पहले प्रयास में कुछ नहीं हुआ; टेस्ट ट्यूबों में पड़े ऊतक ज्यों के त्यों रहे। लेकिन, जब इन टेस्ट ट्यूबों में वियाग्रा को डाला गया और फिर ऊतकों से होकर बिजली गुजारी गई तो शिश्न से लिए गए ऊतकों की रुधिर वाहिकाओं में अचानक शिथिलता आ गई, ठीक उसी तरह जैसे कि किसी व्यक्ति के शिश्न में उत्पन्न होने वाली उत्तेजना के समय होता है। एन्जाइना के इलाज के लिए बनी दवा की इस योनिक अनुक्रिया ने न केवल फिजर कंपनी से जुड़े सभी लोगों बल्कि चिकित्सा विज्ञान की पूरी दुनिया को अचंभित कर दिया।

सन् 1998 में वियाग्रा के आने से पहले शिश्न के उत्तेजित न होने के विकार की कोई मौखिक दवा नहीं थी। इंजेक्शन या कुछ हद तक भयानक लगने वाला कृत्रिम अंग प्रत्यारोपण ही एकमात्र विकल्प थे। वियाग्रा, जिसे रासायनिक रूप से सिल्डेनाफिल सिट्रेट के नाम से जाना जाता है, को सन् 1998 में अमेरिका के खाद्य एवं औषध प्रशासन (फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन) द्वारा मंजूरी मिली। वियाग्रा किसी व्यक्ति में यौन उत्तेजना उत्पन्न नहीं कर सकता, न ही यह शिश्न उत्थापन को अंजाम दे सकता है। यह तभी प्रभावी होता है जब व्यक्ति में यौन उत्तेजना मौजूद हो। जब व्यक्ति को योनिक उत्तेजना होती है तो शिश्न के उच्छायी ऊतक (इरक्टाइल टिशू) का तंत्रिका तंत्र नाइट्रिक ऑक्साइड निर्मुक्त करता है। नाइट्रिक ऑक्साइड एक और एन्जाइम को उद्दीप्त करता है जो साइक्लिक ग्वानसीन मोनाफास्फेट (cGMP) नामक प्रेषक की सृष्टि करता है। यह प्रेषक (cGMP) शिश्न की मसृण पेशी कोशिकाओं को शिथिल करने का काम करता है। परिणामस्वरूप, शिश्न की धमनियों में फैलाव होता है जिससे रुधिर इनके जरिए शिश्न में प्रवेश कर उसे उत्थापित करने का कार्य करता है।

हालांकि वियाग्रा के इतर प्रभाव सामान्य रूप से बहुत हल्के एवं कम समय के लिए होते हैं गहन हृदय रोग या गुर्दे की समस्या से आक्रांत व्यक्तियों, हाल ही में मस्तिष्क घात या हृदयघात भुगत चुके व्यक्तियों तथा अति निम्न रक्तचाप के मरीजों को इसे न लेने की सलाह दी जाती है।

निष्कर्ष

जैसा कि आपने पढ़ा, एक अनुसंधानकर्ता द्वारा प्राप्त महत्वहीन लगने वाला कोई परिणाम दूसरे अनुसंधानकर्ता के लिए एक महत्वपूर्ण खोज का कारण बन सकता है; अनेक वर्षों से किसी चिकित्सीय समस्या का क्रमबद्ध हल ढूंढ़ने वाले किसी चिकित्सक को अचानक "यूरेका" यानी "मुझे मिल गया" पल की अनुभूति हो सकती है; अपने संवर्द्ध में किसी संदूषक का अध्ययन करने वाला वैज्ञानिक इसे व्यर्थ समझ कर फेंकने की बजाए कोई अभिनव खोज कर बैठता है। इन सभी सौभाग्यशाली लोगों में एक विशेषता जो समान रूप से मौजूद है वह है निष्पक्षता यानी उनका खुला मस्तिष्क। जैसा कि सुप्रसिद्ध भौतिकीविद जोसेफ हेनरी ने एक बार कहा था, "महान खोजों के बीज हमारे चारों ओर बिखरे पड़े हैं। लेकिन ये केवल उन मन-मस्तिष्कों में ही अंकुरित होते हैं जो उन्हें लपकने के लिए पूरी तरह से तैयार होते हैं।"

अनिर्वाण रॉय, डिपार्टमेंट ऑफ लाइफ साइंसेस, रीजनल इंस्टिट्यूशन ऑफ एजुकेशन (एनसीईआरटी), भुवनेश्वर, उड़ीसा के साथ जुड़े हैं।

(अनुवादः प्रदीप कुमार मुखर्जी)

अपनी आंखों को स्वस्थ रखें (पृष्ठ 6 को शेषांश)

रुके लम्बे समय तक देखते रहने से उत्पन्न स्थिति) उत्पन्न हो सकता है।

दुष्प्रभावों को कम करने के उपाय

इलेक्ट्रॉनिक डिस्प्ले गैजेट्स, कंप्यूटर, मोबाइल, टीवी आदि के आंखों पर पड़ने वाले हानिकारक प्रभावों के जोखिम को कम करने के लिए निम्नलिखित सुझाव अपनाए जा सकते हैं:

1. आंखों पर कंप्यूटर के हानिकारक प्रभावों से बचने के लिए स्क्रीन और कमरे की चमक को कम रखना चाहिए, ताकि आंखों पर कम जोर पड़े।
2. कंप्यूटर के दुष्प्रभावों से बचने के लिए बच्चों के कंप्यूटर पर बैठने के समय को कम कर देना चाहिए। माता-पिता को अपने बच्चों को 20 मिनट के समयांतराल पर कुछ देर के लिए कंप्यूटर छोड़ने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि आंखों को लगातार कंप्यूटर देखते रहने के जोखिम से बचाया जा सके।
3. लम्बे समय तक टीवी देखने से कई स्वास्थ्य-संबंधी समस्याएं और आंखों में थकान एवं शुष्कता उत्पन्न हो सकती हैं। टीवी को एक उचित दूरी से देखना चाहिए और जितना संभव हो कम से कम टीवी देखना चाहिए।
4. हानिकारक वस्तुओं पर कार्य करते समय दुर्घटनाओं से आंखों को बचाने के लिए सुरक्षा चश्मे या ग्लासेज अवश्य पहनने चाहिए। क्रिकेट, हॉकी, आइस हॉकी, रैकेट बॉल सरीखे कई खेल भी आंखों को घाव पहुंचा सकते हैं। ऐसी चोटों से बचने के लिए स्पोर्ट्स चश्मों, हेलमेट और मुखौटों का प्रयोग आंखों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है।

व्यायाम और आंखों का स्वास्थ्य

हमारे खानपान और क्रियाकलापों पर हमारी आंखों का स्वास्थ्य निर्भर करता है। कई शोधकर्ताओं ने प्रदर्शित किया है कि मोटापे और वयस्क-आयु मधुमेह के रोगियों में मायोपिया (निकटदृष्टिता) रोग प्रायः पाया जाता है। यह भी सिद्ध हो चुका है कि उच्च इंसुलिन स्तर भी आंखों की फोकस करने की शक्ति और स्पष्ट चित्र निर्माण की क्षमता को प्रभावित कर सकता है।

रोजाना व्यायाम सामान्य स्वास्थ्य के साथ-साथ आंखों के लिए भी अच्छा होता है। अधिकतर मामलों में व्यायाम आंखों के लिए लाभदायक पाया जाता है, क्योंकि यह केन्द्रीय रेटिना में शिरा अवराधन (Vein occlusion) को कम करता है। कई अध्ययनों में प्रदर्शित हो चुका है कि शारीरिक व्यायाम हृदयवाहिका विकारों के साथ ही चिह्नित अपकर्षण और मोतियाबिंद सरीखी दृष्टि-संबंधी समस्याओं से भी सुरक्षा प्रदान करता है। व्यायाम अप्रत्यक्ष तरीके से डायबिटिक रेटिनोपैथी, मोटापे और उपापचयी विकारों के जोखिम को कम करता है। नियमित शारीरिक व्यायाम, जैसेकि चलना-फिरना आंखों को स्वस्थ बनाए रखने में सहायक होता है। आंखों में खुजली, जलन, असाधारण रूप से लाल होना, दृष्टि धुंधली होना, आंखों में दर्द, अधिक पानी बहना अथवा प्रकाश के प्रति असाधारण संवेदनशीलता के लक्षणों को नज़रंदाज नहीं करना चाहिए। क्योंकि ये संक्रमण के चिह्न माने जाते हैं और ऐसे मामलों में आंखों के विशेषज्ञ से परामर्श लेना चाहिए।

अनामिका चौहान, हेमवती नंदन बहुगुणा विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखंड) से संबद्ध हैं।

(अनुवादः रूपेंद्र शर्मा)

बवासीर रोग निवारण सरल उपचार एवं सर्जरी विधियां

डॉ. यतीश अग्रवाल
ई-मेल: dryatish@yahoo.com

बवासीर या पाइल्स एक आम तकलीफ़ है जो लगभग 50 प्रतिशत लोगों को जीवन में कभी न कभी परेशान करती ही है। यह कष्ट और कुछ नहीं बल्कि गुदा एवं मलद्वार के आसपास एवं भीतरी क्षेत्र की संवर्धित एवं शोथयुक्त शिराएं ही हैं। इस तरह का कष्ट कई रूपों में ज़िंदगी को दूभर .बना देता है जिसमें गुदा से रुधिर स्राव भी शामिल है। लेकिन इन तमाम परेशानियों से जूझना इतना मुश्किल भी नहीं, बस ज़रूरत है दृढ़ मनोबल की।

बवासीर से राहत पाने के लिए अनेक उपचार सुलभ हैं। उनमें से सरलतम हैं' क्रीम ऑइण्टमेंट और सपोजिटरीज़ जिन्हें बवासीर ग्रस्त व्यक्ति को गुदा में प्रविष्ट कराना होता है। ऐसी चीजें किसी भी कैमिस्ट की दुकान पर सहज सुलभ होती हैं और उनके लिए चिकित्सक के निर्देश की ज़रूरत भी नहीं पड़ती। इस तरह के उपचारों से, खुजली, बेचैनी और सूजन से राहत मिल जाती है। इन्हीं उपचारों से आराम मिल जाने पर कुछ ही दिनों में बवासीर का कष्ट खुद ब खुद खत्म हो जाता है।

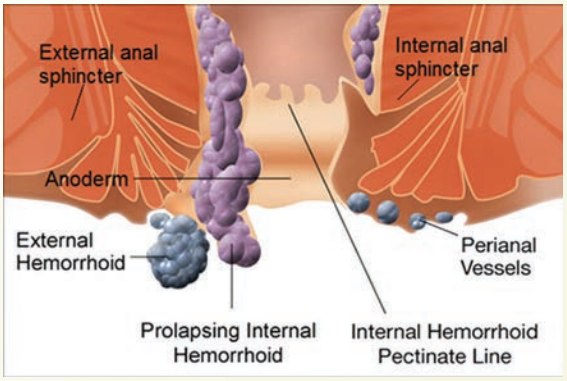

बाद में भी बवासीर दोबारा न होने देने और उससे भविष्य में बचाव के लिए यह ज़रूरी है कि व्यक्ति अपने आहार में बदलाव कर कब्ज से दूर रहे ताकि नित्यकर्म से निवृत्त होते समय गुदा की शिराओं पर जोर न डालना पड़े। चिकित्सक के द्वारा इससे ऐसे बचाव के लिए कुछ औषधियां निर्दिष्ट करना भी संभव है।

इस प्रकार के सरल उपचार वैसे अधिक गंभीर प्रवृत्ति के बवासीर रोग में कारगर सिद्ध नहीं हो पाते। इस प्रकार की स्थिति के लिए कुछ अधिक दृढ़ तरीके अपनाए जाते हैं जैसे कि 'बैण्डिंग' जिसमें गुदा की फूली हुई शिराओं के सिरे पर मज़बूती से एक इलैस्टिक बैण्ड बांध दिया जाता है ताकि उनमें रुधिर संचार न हो सके; या फिर 'स्क्लैरोथेरेपी' की जाती है जिसके अंतर्गत गुदा एवं मलद्वार में एक रासायनिक द्रव इंजेक्शन के माध्यम से पहुंचाया जाता है। बवासीर ग्रस्त लोगों में से, 16 में एक व्यक्ति को सर्जरी करवानी पड़ती है। आजकल कई सर्जरी विधियां प्रचलन में हैं जिनसे बवासीर को हटाना या उसे संकुचित कर देना संभव हो जाता है।

औषधि उपचार

सामयिक

बवासीर के रोग लक्षणों में राहत पहुंचाने वाली अनेक प्रकार की क्रीम, ऑइण्टमेंट एवं सपोज़िटरी फार्मेसी से सहज उपलब्ध हो जाते हैं। इनका उपयोग करने से बैचेनी और शोथ में आराम मिलता है किन्तु इन्हें एक वक्त में, पांच से सात दिन ही प्रयुक्त किया जाना चाहिए। इससे अधिक समय तक इनका उपयोग करने से गुदा के आसपास की त्वचा में क्षोभ उत्पन्न हो सकता है।

इन वस्तुओं का चयन व्यक्तिगत रुचि के आधार पर किया जाता है। जो भी पदार्थ व्यक्ति को अपने अनुकूल प्रतीत हो, उसका चयन संभव है क्योंकि ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर एक वस्तु को दूसरी से बेहतर सिद्ध किया जा सके।

कॉर्टिकोस्टेरॉयड क्रीम

गुदा एवं मलद्वार के आसपास के क्षेत्र में तीव्र प्रवृत्ति का शोथ रहने पर चिकित्सक कॉर्टिकॉस्टेरॉयड क्रीम का उपयोग करने की हिदायत देते हैं। जिसमें स्टेरॉयड विद्यमान होते हैं। एक समय में, इस क्रीम का भी, सप्ताह भर से अधिक उपयोग न करें। लम्बे समय तक ऐसी क्रीम का उपयोग गुदा एवं मलद्वार के आसपास की त्वचा को पतला कर देता है और त्वचा का क्षोभ भी अधिक हो जाता है।

कब्जहर दवाएं

व्यक्ति को, कब्ज होने की स्थिति में चिकित्सक ऐसी दवाएं लेने का परामर्श देता है। इस प्रकार की सहायक औषधियों से कब्ज पर काबू पाने में मदद मिलती है।

दर्द निवारक एवं सुन्न करने वाली गोलियां

आम दर्द निवारक गोली जैसे कि पैरासिटामोल का उपयोग करने पर बवासीर के दर्द से राहत मिलती है। वैसे भी यह सर्वाधिक सुरक्षित औषधि है।

स्टेरॉयडरहित शोथ - हर दवाइओं से जैसे कि इबुप्रोफ़ीन लेने से गुदा का रुधिर स्राव बिगड़ जाता है। कोडीन दर्द निवारक दवाओं का भी उपयोग संगत नहीं होता क्योंकि उनसे रोगी को कब्ज हो जाता है।

चिकित्सक इस प्रकार औषधियां निर्दिष्ट करते हैं जिनमें स्थानिक एनेस्थेसिया होता है। जिससे बवासीर के दर्द में राहत मिलती है। सहज सुलभ सामयिक औषधियों की तरह इन्हें भी कुछ ही दिनों तक प्रयुक्त किया जाना चाहिए अन्यथा गुदाप्रदेश की त्वचा अधिक सुग्राही (सेंसिटिव) बन जाती है।

सर्जरीरहित उपचार

आहार सम्बंधी परिवर्तन एवं औषधियों से रोगलक्षणों में राहत न मिलने की स्थिति में चिकित्सक व्यक्ति को किसी सर्जन अथवा वृहदान्त्र-गुदा विशेषज्ञ से मिलने का परामर्श देता है जो व्यक्ति की स्थिति का आकलन कर उसके अनुकूल उपचार विधि निर्दिष्ट करते हैं।

गुदा-जाल के ऊपरी भाग में बवासीर होने पर सर्जरी के स्थान पर 'बैण्डिंग और स्क्लेरोथेरैपी' विधि अपनाई जाती है।

बैण्डिंग

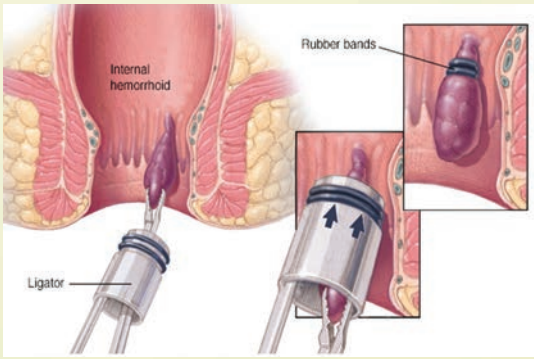

बैण्डिंग के अंतर्गत एक इलैस्टिक पट्टी को बवासीर मस्सों के सिरे पर कसकर बांध दिया जाता है ताकि मस्सों तक रुधिर संचार न पहुंच सके। ऐसा करने पर हफ्ते भर के भीतर मस्से सूख कर बाहर निकल जाते हैं।

बैण्डिंग विधि एक दिन का उपचार है, जिसमें एनेस्थेसिया देने की जरूरत भी नहीं पड़ती और रोगी दूसरे ही दिन अपनी दैनिक चर्या आरंभ कर सकता है।

उपचार विधि सम्पन्न होने के बाद व्यक्ति को एकाध दिन दर्द व असहजता महसूस होती है

किंतु सामान्य दर्द निवारक दवाओं से इसमें राहत मिल जाती है। ज़रूरत पड़ने पर चिकित्सक द्वारा कुछ तीव्र दवाएं भी दी जा सकती हैं।

बैण्डिंग उपचार विधि के पश्चात प्रायः रोगी को बवासीर के मस्सों के सूखकर गिर जाने का अहसास नहीं होता क्योंकि वे मलत्याग के समय सहज रूप से निकल जाते हैं। उपचार के एक सप्ताह पश्चात गुदा स्थान से श्लेष्मा निकलने का अभिप्राय यही है कि मस्से सूखकर स्वतः निकल गए हैं।

बैंण्डिग प्रक्रिया के तुरंत पश्चात शौच के लिए जाने पर सीट पर रक्त नज़र आ सकता है। ऐसा होना सामान्य है किंतु मलद्वार से रुधिर स्राव अधिक नहीं होना चाहिए।

शौच जाने पर काफ़ी मात्रा में लाल रंग का रुधिर या रक्त के थक्के निकलने पर तुरंत चिकित्सक से परामर्श किया जाना चाहिए अथवा निकटतम आपात सेवा का सहारा लिया जाना चाहिए। बैण्डिंग की जगह पर कभी-कभार अल्सर पनप जाते हैं किंतु वे बिना किसी खास उपचार के स्वतः ठीक भी हो जाते हैं।

स्क्लेरोथेरैपी शॉट्स

बैण्डिंग के विकल्प रूप में एक अन्य उपचार विधि अपनाई जाती है जिसे 'स्क्लेरोथेरैपी' कहा जाता है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत गुदानाल की रुधिर वाहिकाओं में एक रसायनयुक्त द्रव इंजेक्शन के माध्यम से पहुंचाया जाता है। ऐसा करने पर इंजेक्शन की जगह वाले स्नायु सिरे सुन्न पड़ जाते हैं और दर्द कम होने लगता है। साथ ही इस प्रविधि से बवासीर के ऊतक सख्त पड़ जाते हैं और एक क्षत बन जाता है। चार से छः सप्ताह के बाद बवासीर के मस्से आकार में छोटे हो जाते हैं या फिर झड़ जाते हैं।

स्क्लेरोथेरैपी का इंजेक्शन लेने के बाद दिन भर किसी प्रकार का श्रमसाध्य व्यायाम करना संगत नहीं।

इस प्रक्रिया में हल्का सा दर्द हो सकता है और थोड़ा रुधिर स्राव भी। अगले दिन से रोजमर्रा का काम काज शुरू किया जा सकता है।

इलैक्ट्रोथेरैपी

बवासीर के मस्सों का आकार छोटा होने पर एक अन्य विधि अपनाई जाती है जिसे 'इलैक्ट्रोथेरैपी' तथा इलैक्ट्रोकोएगुलेशन (विद्युत स्कंदन) के नाम से भी जाना जाता है तथा बैण्डिंग के विकल्प रूप में इसका प्रयोग किया जाता है। उपचार प्रक्रिया के दौरान 'प्रोक्टोस्कोप' नाम का एक उपकरण मलद्वार में प्रविष्ट कराया जाता है। जिससे बवासीर की वास्तविक स्थिति का जायज़ा ले पाना संभव हो जाता है। बवासीर का संज्ञान होते ही दंतुल रेखा के ऊपर बवासीर के मस्सों के सिरे तक पहुंचाई गई धातु की एक सलाई के माध्यम से विद्युत तरंगें भेजी जाती हैं। परीक्षण यंत्र में नियंत्रक लगे होते हैं जिससे विशेषज्ञ तरंगों पर नियंत्रण बनाए रखता है।

इलैक्ट्रोथेरैपी उपचार विधि का प्रयोग बहिरोगी विभाग में एवं अस्पताल में भर्ती कर दोनों तरह से किया जा सकता है। मंद विद्युत तरंगें बिना एनेस्थेसिया के प्रयुक्त की जाती हैं एवं उच्च स्तर की तरंगें सामान्य एनेस्थेसिया या रीढ़ मेरुदण्ड को सुन्न कर पहुंचाई जाती हैं।

इलैक्ट्रोथेरैपी के दौरान या बाद में हल्का दर्द होना संभव है किंतु अधिकांश प्रसंगों में यह अधिक देर तक बना नहीं रहता। गुदा से रुधिर स्राव भी प्रक्रिया का एक संभाव्य पार्श्व प्रभाव है, किंतु ऐसा लम्बे समय तक नहीं रहता।

छोटे मस्सों में इलैक्ट्रोथेरैपी उपचार विधि काफी कारगर सिद्ध हुई है। इन प्रक्रियाओं का उपयोग बड़े मस्सों में सर्जरी के विकल्प रूप में भी किया जा सकता है। किंतु इसकी प्रभाविता के प्रमाण कम मिलते हैं।

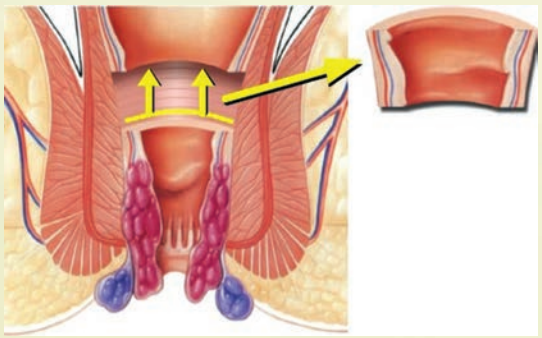

सर्जरी

बवासीर के अधिकांश मरीजों का इलाज हालांकि सरल उपचार विधियों से करना संभव है किंतु 10 मे से 1 मामले में आखिरकार सर्जरी की शरण लेनी ही पड़ती है। बवासीर के लिए प्रयुक्त होने वाली सर्जरी विधियां विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं किंतु सामान्यतः उन सभी का लक्ष्य या तो बवासीर के मस्सों को हटाना होता है या फिर उनका रुधिर संचार रोककर अर्ध संकुचित कर स्वतः नष्ट होने देना।

बवासीर के लिए प्रयुक्त होने वाली सर्जरी विधियों में मुख्य निम्न हैं :

हेमोरॉयडेक्टमी

यह सर्जरी विधि बवासीर के मस्सों को हटाने में प्रयुक्त की जाती है। सर्जरी से लगभग एक घण्टे पहले रोगी को एनीमा दिया जाता है ताकि मलाशय का निचला हिस्सा साफ़ रहे। यह ऑपरेशन सामान्य एनेस्थेसिया के अंतर्गत किया जाता है। ऑपरेशन के दौरान बवासीर के मस्से एवं उनकी लटकनों को एक विद्युतीय उपकरण से काट दिया जाता है (डायथर्मी)। आमतौर पर ऑपरेशन के बाद घाव खुले छोड़ दिए जाते हैं। इस सर्जरी में लगभग 45 मिनट का समय लगता है।

सर्जरी के बाद स्वास्थ्य सुधार

बवासीर की सर्जरी करवाने के बाद तकलीफ़ हो सकती है। ऐसे में रोगी को कुछ स्थानिक एनेस्थेसिया इंजेक्शन दिए जाते हैं जिससे कुछ घण्टों के लिए दर्द की जगह सुन्न हो जाती है।

सर्जन द्वारा घाव की साफ़-सफाई के लिए प्रयुक्त पदार्थ को भी गुदा से हटा दिया जाता है ताकि मल का निकास सहजता से हो। रोगी को मूख प्यास महसूस होने पर उन्हें खाने पीने की इजाजत होती है। अधिकांश रोगियों को उसी दिन घर वापस भेज दिया जाता है।

व्यक्ति को मुख द्वारा ली जाने वाली दर्दनिवारक गोलियां दी जाती हैं जिन्हें हिदायत के अनुसार नियमित रूप से लिया जाना चाहिए। साथ ही एक एण्टीबायोटिक औषधि मेट्रोनाइडेजोल (फ्लैगेल) भी सर्जरी के बाद सात दिन तक लेने को कहा जाता है। इस दवा से तकलीफ़ में राहत देखी गई है।

सर्जरी के बाद पहली बार मलत्याग करते समय कष्ट होता है किंतु इस कष्ट के भय से शौच करने से बचना अच्छा नहीं है। धीरे-धीरे तकलीफ़ कम हो जाएगी।

रोगी को 4-6 सप्ताह तक मल को ठीक रखने वाली दवा दी जाती है और यह हिदायत भी कि निवृत होते समय ज़ोर न लगाया जाए।

ऑपरेशन होने के बाद व्यक्ति को चलते-फिरते रहने की हिदायत भी दी जाती है। उन्हें भारी वस्तु उठाने या अधिक शारीरिक परिश्रम करने से, छः सप्ताह तक बचने को भी कहा जाता है। रोगी की स्थिति के अनुसार उन्हें दो से चार सप्ताह में ड्राइविंग की भी इज़ाजत दी जा सकती है । अस्पताल के सर्जरी बहिर्विभाग में रोगी को लगभग छः सप्ताह बाद दोबारा आने को कहा जाता है किंतु ऐसा हर रोगी के लिए ज़रूरी नहीं, उन्हें कोई समस्या होने पर इससे पूर्व भी देखा जा सकता है।

रोग की पुनरावृत्ति की संभावना

हैमोरॉयडेक्टमी करवाने के बाद भी 20 में एक व्यक्ति को दोबारा रोग होने की संभावना रहती है। ऐसी संभावना सर्जरी रहित उपचार विधि

में नहीं होती। आहार में उच्च रेशायुक्त पदार्थों को अपनाकर इस आशंका को कम करवाना संभव है।

स्टेपलिंग

स्टेपलिंग को स्टेपल्ड हेमोरॉयडोपेक्सी भी कहा जाता है। यह प्रविधि पारंपरिक हेमोरॉयडेक्टमी का एक विकल्प है जिसका उपयोग लटकने वाले बवासीर के मस्सों में किया जाता है, एवं इस प्रक्रिया में सामान्य ऐनेस्थेसिया का उपयोग होता है। ऑपरेशन के दौरान एनोरेक्टम – वृहदांत्र का आखिरी अंश – का एक हिस्सा स्टेपल कर दिया जाता है। ऐसा करने से उनका लटकना रुक जाता है तथा उनमें रुधिर संचार भी कम होने लगता है। परिणामतः वे अंततः सूखने लगते हैं।

लाभ

स्टेपलिंग में परंपरागत हेमोरॉयडेक्टमी की अपेक्षा कम अवधि में स्वास्थ्य लाभ होना संभव है एवं व्यक्ति लगभग एक सप्ताह बाद अपना कामकाज कर सकता है। इस प्रक्रिया में अपेक्षाकृत कष्ट भी कम होता है।

जोखिम

हेमोरॉयडेक्टमी की अपेक्षा स्टेपलिंग के बाद लटकन वाले बवासीर के मस्सों के दोबारा हो जाने की आशंका अधिक रहती है।

इस प्रक्रिया में, अधिक गंभीर किस्म की जटिलताओं का खतरा भी अन्य उपचार विधियों से कुछ वृहत स्तर का रहता है। ऐसे जोखिमों में, महिलाओं में उभरने वाला गुदा-योनि नालव्रण (फिस्टुला) सम्मिलित है – जिसमें गुद नलिका एवं योनि के बीच एक छोटी वाहिका बन जाती है; साथ ही एक अन्य जोखिम मलद्वार छिद्रण हो जाने का है जिसमें मलद्वार में एक छिद्र बन जाता है।

हेमोरॉयडल आर्टरी लिगेशन ऑपरेशन

बवासीर में रुधिर प्रवाह कम करने के लिए कुछ सर्जन उक्त ऑपरेशन करवाने की हिमायत करते हैं। यह सर्जरी हेमोरॉयडेक्टमी एवं स्टेपलिंग विधि की अपेक्षा अधिक सुरक्षित एवं प्रभावी है। सर्जरी सामान्य एनेस्थेसिया के अंतर्गत की जाती है। जिसमें गुदा के भीतर एक छोटा अल्ट्रासाउण्ड उपकरण प्रविष्ट कराया जाता है। उपकरण उच्च आवृत्ति वाली ध्वनि तरंगें उत्पन्न करता है जिनसे सर्जन बवासीर के मस्सों में रुधिर पहुँचाने वाली वाहिकाओं का संज्ञान लेने में समर्थ हो जाता है।

प्रक्रिया के अंतर्गत प्रत्येक रुधिर वाहिका को सिल दिया जाता है ताकि मस्सों तक रुधिर न पहुंच सके। ऐसा करने पर अगले कुछ दिनों या हफ्तों में मस्से सूख जाते हैं। इस तरह के सिलाई के टाँके गुदा से लटकने वाले मस्सों के उपचार में भी प्रयुक्त किए जा सकते हैं।

लाभ

इस प्रकार की सर्जरी के बाद स्वास्थ्य लाभ में अन्य प्रविधियों की अपेक्षा कम समय लगता है, दर्द भी कम होता है एवं परिणाम भी अधिक संतोष जनक होते हैं।

जोखिम

एक हल्का सा खतरा, मलत्याग करते समय रुधिर स्राव एवं दर्द का रहता है, या फिर बवासीर के मस्से इस सर्जरी के बाद लटक भी सकते हैं। किंतु ये सभी परेशानियाँ कुछ सप्ताह में अपने आप दूर हो जाती हैं।

बवासीर सर्जरी से जुड़े खतरे

बवासीर की सर्जरी करवाने पर गंभीर समस्यायें हालांकि कम ही होती हैं किंतु कभी कभार जटिलतायें सामने आ जाती हैं। सर्जरी करवाने से पहले इस प्रकार की सभी आशंकाओं की चर्चा सर्जन से अवश्य की जानी चाहिए।

जटिलताएं निम्न रूप में होनी संभव हैं :

गुदा से रुधिर स्राव

ऑपरेशन के एक सप्ताह बाद कुछ रोगियों को गुदा द्वार से रुधिर स्राव या खून के थक्के निकलने की शिकायत संभव है।

गुदाक्षत बन जाना

सर्जरी के बाद संक्रमण की संभावना भी रहती है जिसके कारण पीव संचित हो जाता है, या फिर गुदा में घाव पनपने लगता है। इस खतरे से बचाव के लिए ऑपरेशन के बाद एण्टीबायोटिक दवाओं को कुछ समय के लिए लेना पड़ता है।

तीव्र मूत्र अवरोध

ऑपरेशन के बाद रोगी को मूत्र अवरोध के कारण पेशाब करने में कष्ट होना संभव है।

मल असंयति

ऑपरेशन के बाद रोगी को स्वतः मल निकलने की शिकायत भी रह सकती है।

मलद्वार में नाल व्रण (फिस्टुला) बन जाना

ऑपरेशन के बाद मलद्वार में नालव्रण विकसित हो सकता है जिसमें गुदानाल एवं त्वचा की सतह के बीच मलद्वार के निकट एक छोटी रुधिर वाहिका बन जाती है।

गुदानाल संकीर्णता

रोगी को सर्जरी के बाद गुदानाल की संकीर्णता का कष्ट भी झेलना पड़ सकता है। बवासीर के मस्से गुदानाल के अस्तर के आसपास गोल घेरे में पनप जाने पर करवाई गई सर्जरी के बाद, ऐसा अमूमन देखा जाता है।

चेतावनी : चिकित्सीय परामर्श लिया कब जाए?

सर्जरी के बाद निम्न में से किसी भी रोग लक्षण के व्यक्त होने पर अस्पताल या पारिवारिक चिकित्सक से अवश्य सम्पर्क किया जाना चाहिए।

- अतिरिक्त रुधिर स्राव
- तीव्र ज्वर
- पेशाब करने में कठिनाई
- मलद्वार के निकट बढ़ता हुआ दर्द या शोथ।

(अनुवादः कुंकुम जोशी) ■

लेख आमंत्रित हैं

ड्रीम 2047

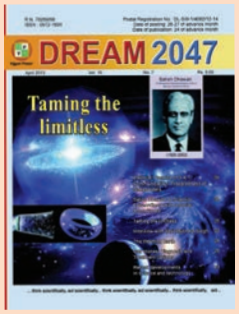

विज्ञान प्रसार, अपनी मासिक पत्रिका *ड्रीम 2047* के लिए विज्ञान लेखकों से लोकप्रिय विज्ञान पर मूल लेखों को आमंत्रित करता है। वर्तमान में इस पत्रिका के 50,000 से अधिक सदस्य हैं। अधिकतम 3000 शब्दों सहित लेख हिंदी या अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं। नियमित स्तंभों i) स्वास्थ्य ii) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां के लिए भी लेखों का स्वागत है। अगर लेख को प्रकाशन के लिए स्वीकार कर लिया जाता है तो विज्ञान प्रसार के मानक के अनुसार लेखक (कों) को मानदेय दिया जाएगा। अधिक जानकारी के लिए देखें www.vigyanprasar.gov.in या ई-मेल करें dream@vigyanprasar.gov.in

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अभिनव उपलब्धियां

बिमान बसु
ई-मेल: bimanbasu@gmail.com

स्मैश (SMASH) सिद्धांत भौतिकी की पांच प्रमुख समस्याओं को हल कर सकता है

कण भौतिकी का मानक मॉडल एक ऐसा सिद्धांत है जो न केवल विद्युत चुम्बीय, क्षीण एवं प्रबल अन्योन्यक्रियाओं की सुस्पष्ट व्याख्या करता है बल्कि सभी ज्ञात मूल कणों का वर्गीकरण भी करता है। इसका विकास 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विश्वभर के वैज्ञानिकों के सहभागिता पूर्ण प्रयास के रूप में हुआ था। मानक मॉडल में क्वार्क (प्रोटोनों एवं न्यूट्रॉनों के निर्माणक कण), इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रिनो, तथा हिग्स बोसोन जैसे अधिक आकर्षक कण शामिल हैं। मानक मॉडल में कुल मिलाकर सतरह विभिन्न प्रकार के कणों का विवरण है।

किन्तु मानक मॉडल आदर्श नहीं है क्योंकि इसका अद्यतन रूप बह्मांड के केवल पांच प्रतिशत के लगभग द्रव्य की व्याख्या करने में ही समर्थ है – वह द्रव्य जिससे हम सुपरिचित हैं और जो दृश्य है। तथापि, खगोल भौतिकीय प्रेक्षण यह इंगित करते हैं कि रहस्यमय अदृश्य द्रव्य इसके पांच गुने से भी अधिक परिमाण में विद्यमान हैं और मानक मॉडल इसकी व्याख्या नहीं कर सकता। सैद्धांतिक भौतिकी विदों के एक अंतर्राष्ट्रीय दल ने अब मानक मॉडल का एक विस्तार प्रस्तुत किया है जो न केवल अदृश्य द्रव्य की व्याख्या कर सकता है, अपितु, कण भौतिकी की पांच चुनौतीपूर्ण समस्याओं को भी तत्काल हल कर देता है। पूर्व के प्रयासों में इन परिघटनाओं की व्याख्या की कोशिशें काफी अधिक जटिल रही थीं और इनमें सैकड़ों कणों को भी विचार में लाना पड़ता था। किन्तु अन्वेषकों का कहना है कि इस नए मॉडल में समस्याएं ''लगभग 10^{11}GeV के एक अनन्य अभिनव भौतिक स्केल की ओर इंगित करते एक हल के साथ उल्लेखनीय रूप से सरल ढंग से गुंफित की जा सकती हैं''। (फिजिकल रिव्यू लेटर्स, 15 फरवरी 2017। DOI: 10.1103/PhysRevLett.118.071802)

''स्टैंडर्ड मॉडल एक्सियन सीसॉ हिग्स'' अथवा स्मैश (SMASH) नामक प्रवेश द्वार स्फीति, पेरिस–सैक्ले विश्वविद्यालय के फ्रांसिसी वैज्ञानिकों के एक दल द्वारा भौतिकी की सबसे बड़ी पांच समस्याओं अदृश्य द्रव्य, ब्रह्मांडीय स्फीती प्रबल सीपी समस्या, न्यूट्रिनो दोलन तथा बैरयोजनन – को हल करने के लिए दिए गए अलग-अलग सिद्धांतों के एकीकरण के प्रयास में विकसित की गई थी। बैरयोजनन काल्पनिक भौतिक प्रक्रम हैं जिनके कारण आदि ब्रह्मांड में द्रव्य (बैरयॉन) एवं प्रतिद्रव्य (प्रतिबैरयॉन) का असंतुलन उत्पन्न हुआ था।

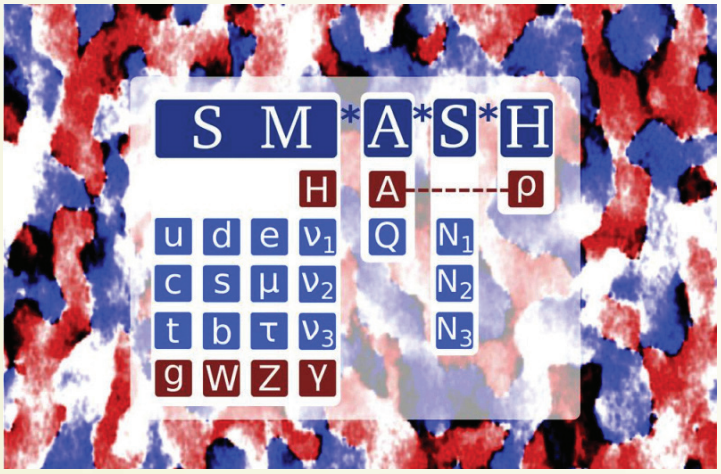

स्मैश, विस्तरित मानक मॉडल। इसके छः नए कण दाहिनी ओर तीन स्तंभों में दर्शाए गए हैं।

अद्यतन भौतिकी सिद्वांत में ये सभी समस्याएं किसी न किसी रूप में क्वांटम यांत्रिकी के रहस्यों से जुड़ी हैं। यह नवीन सिद्धांत न्यूट्रिनो द्रव्यमान की व्याख्या सी-सॉ' सिद्धांत – हमारे ज्ञात (अत्यंत हल्के) तीनों न्यूट्रिनों को संतुलित करने के लिए एक अपेक्षाकृत भारी प्रतिरूप की अवधारणा – का उपयोग करके करता है। अन्वेषकों के अनुसार, इन भारी न्यूट्रिनों का प्रतिद्रव्य की अपेक्षा द्रव्य में अधिक परिमाण में असंतुलित क्षय इस तथ्य की व्याख्या करता है कि ब्रह्मांड में द्रव्य का प्रभुत्व क्यों है।

स्मैश सिद्वांत ने मानक मॉडल में कुल छः नवीन कण – तीन भारी, दक्षिणावर्ती न्यूट्रिनों; एक अतिरिक्त क्वार्क; एक तथाकथित 'एक्सियन' तथा एक भारी र्हो (ρ) कण – जोड़े हैं। अन्वेषकों के अनुसार, एक्सियन (जिसकी भविष्यवाणी 1977 में पहली बार की गई थी) अदृश्य द्रव्य की संभावित व्याख्या रूप है; जिसमें भारी न्यूट्रिनो पहले से ही ज्ञात रहे अत्यंत हल्के न्यूट्रिनो की व्याख्या करता है। र्हो कण कुछ कुछ हिग्स बोसोन के जैसा है; यह न्यूट्रिनो को द्रव्यमान प्रदान करता है और इसी ने महाविस्फोट (बिग बैंग) के बाद के पहले क्षणांश में हिग्स बोसोन के साथ दलबद्ध होकर वैश्विक स्फीति को प्रचालित किया था। इसके अतिरिक्त यह इस बात की व्याख्या भी करता है कि हमारे ब्रह्मांड में प्रतिद्रव्य की तुलना में द्रव्य का परिमाण बहुत अधिक क्यों है जबकि महाविस्फोट में इनकी समान मात्राएं सृजित हुई होंगी; और इससे यह उद्घाटित भी होता है कि प्रबल बल में, जो मूलभूत अन्योन्यक्रियाओं में से एक हैं, सी पी सममिति का कोई भी उल्लंघन क्यों नही होता।

अन्वेषकों के अनुसार, ''स्मैश के बारे में अच्छी बात यह है कि यह सिद्धांत झुठलाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यह तथाकथित वैश्विक माइक्रोतरंग पृष्ठभूमि के कुछ विशिष्ट लक्षणों की अत्यंत परिशुद्ध भविष्यवाणी करता है। भावी प्रयोग जो इस विकिरण का और भी अधिक परिशुद्धता से माप करेंगे या तो इन भविष्यवाणियों की पुष्टि करेंगे या फिर नहीं करेंगे और इस प्रकार स्मैश सिद्धांत को पुष्ट या निरस्त कर देंगे।'' उनको आशा है कि अगले दस वर्षों में संभवतः प्रभावी रूप से स्मैश सिद्धांत की प्रायोगिक जांच हो जाएगी।

विटामिन-बी वायु प्रदूषण के दुष्प्रभावों को कम कर सकता है

बढ़ती मृत्युदर के साथ वायु प्रदूषण के सह संबंधो के प्रमाण प्राप्त होने के कारण गत कुछ वर्षों में वायुप्रदूषण एक प्रमुख स्वास्थ्य चिंता बन गई है। प्रतिवर्ष लगभग 24 लाख मौतों के लिए वायुप्रदूषण को उत्तरदाई माना जा सकता है। मुख्य अपराधी विविक्त कण हैं जिन्हें हम पीएम 2.5 के नाम से जानते है और जो ऐसे कणों का द्योतक हैं जो 2.5 माइक्रोमीटर या इससे भी कम व्यास के अर्थात मानव बाल के 30 गुना से भी कम व्यास के होते हैं। पीएम 2.5 मुख्यतः दहन से उत्पन्न होते हैं। डीजल कार इन्जन तथा कोयले अथवा गैस चालित शक्ति संयंत्र प्रमुख पीएम 2.5 स्रोत होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व की 92% जनसंख्या ऐसे स्थानों में रहती है जहां पीएम 2.5 स्तर 10 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर के संस्तुत देहरी स्तर से अधिक है। भारत की राजधानी दिल्ली में औसत पीएम 2.5 स्तर 153 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर पाया गया है जो बीजिंग के स्तर का लगभग तीन गुना और न्यूयार्क शहर के औसत स्तर से 10 गुना से भी अधिक है।

वातावरण के पीएम 2.5 प्रदूषण सर्वाधिक घातक वायु प्रदूषकों में शामिल हैं क्योंकि वे श्वसन नाल में निक्षेपित हो जाते हैं जिससे दोनों फेफड़ों और श्वसन तंत्र में सूजन और तनाव पैदा हो जाता है। पीएम 2.5 इतने छोटे होते हैं कि वे हमारे श्वसन तंत्र के सुरक्षा घेरों से होकर गुजर जाते हैं और आसानी से हमारे फेफड़ों में प्रविष्ट हो जाते हैं जहां वे रक्त प्रवाह तक को भेद जाते हैं और वास्तविक क्षति पहुंचाते हैं। वैज्ञानिकों को शंका है कि पीएम 2.5 हमारी कोशिकाओं में स्थाई जीनीय परिवर्तन ला सकते हैं जो ऐसे विक्षोभ और उत्परिवर्तन हो सकते हैं जिनसे हमारे स्वास्थ्य को क्षति पहुंच सकती है। यह पाया गया है कि जो लोग उच्च पीएम 2.5 स्तर के शहरों में रहते हैं उनमें हृदय आघात, फुफ्फुस प्रकार्य अवनमन, दमे में वृद्धि आदि अधिक होते हैं और कुल मिलाकर स्वच्छ हवा में सांस लेने वाले लोगों की तुलना में कम उम्र में मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

दिल्ली में वायु प्रदूषण

वर्तमान में उत्सर्जन नियंत्रण एवं नियमन ही वायु प्रदूषण नियंत्रण की रीढ़ है। तथापि, नियमन के बावजूद दुर्भाग्यवश विश्वभर के अनेक महानगरों में प्रदूषण का उच्च स्तर अभी भी छाया हुआ है। व्यक्ति के रूप में हमारे पास वायु प्रदूषण से अपने आपको बचा कर रखने के विकल्प बहुत सीमित हैं। किंतु फिर भी उम्मीद बाकी है। अद्यतन अनुसंधान ने दर्शाया है कि स्वास्थ्य पर पीएम 2.5 के हानिकर प्रभावों को विटामिन-बी पूरकों की खुराक देकर कम किया जा सकता है। शोधदल ने पाया है कि प्रतिदिन विटामिन-बी की एक खुराक देने जैसे सरल उपाय को अपना कर मानव देह पर सूक्ष्म कणों के प्रभाव को कम किए जा सकने की संभावना है (*प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज*, 13 मार्च 2017। doi:10.1073/pnas.1618545114)

यह अध्ययन बहुत ही सीमित पैमाने पर किया गया था। अध्ययन में भाग लेने के लिए ऐसे 10 स्वयंसेवकों को चुना गया था जो स्वस्थ, धूम्रपान न करने वाले, 18 से 60 वर्ष आयु के कोई भी औषधि अथवा विटामिन पूरक न लेने वाले व्यक्ति थे। स्वयंसेवकों को शुरू में स्वच्छ वायु में रखा गया और प्लैसेबो प्रभाव के तहत उनकी आधार रेखा स्थिति की जांच की गई। फिर और चार सप्ताह के लिए स्वयंसेवकों को प्लैसेबो प्रभाव के तहत रखा गया और फिर उन्हें कनाडा के टोरंटो शहर के उस अत्यधिक प्रदूषित वायु के वातावरण में रखा गया जहां से अनुमानतः 1000 कारें प्रति घंटे गुजरती हैं। यह प्रदूषित वायु इन स्वयंसेवकों को एक 'आक्सीजन' जैसे फेस मास्क द्वारा प्रदान की गई। फिर प्रत्येक स्वयं सेवक को 2.5 mg फोलिक एसिड, 50 mg विटामिन B_6 तथा 1 mg विटामिन B_{12} से निर्मित विटामिन B पूरक देकर प्रयोग को दोहराया गया। अन्वेषकों ने पाया कि चार सप्ताह के विटामिन-बी पूरकों ने पीएम 2.5 प्रभाव के कारण होने वाली क्षति को 28 से 76 प्रतिशत कम कर दिया।

अन्वेषकों के अनुसार सीमित पैमाने पर होने के बावजूद फिर भी यह अध्ययन दर्शाता है कि 2.5 माइक्रोमीटर से कम व्यास के कणों के दुष्प्रभावों में निहित संभावित पथमार्गों के नियंत्रण के लिए व्यक्तिगत स्तरीय रोकथाम संभव कैसे की जा सकती है। विश्व के जिन क्षेत्रों में पीएम 2.5 का स्तर बारंबार शिखर पर पहुंचता है वहां जन-स्वास्थ्य लाभ के लिए यह अध्ययन महत्वपूर्ण हो सकता है।

एंड्रिया बैक्कारेली ने जो कोलम्बिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क के मैलमन स्कूल ऑफ पब्लिक हैल्थ में पर्यावरणीय स्वास्थ्य विज्ञानों के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हैं तथा अनुसंधान दल के सदस्य हैं, यह आशा व्यक्त की है कि भावी अध्ययन, विशेषकर भारी प्रदूषण ग्रस्त क्षेत्रों में इन निष्कर्षों को पुष्ट करने के लिए किए जाएंगे और अंततः वायु प्रदूषण के स्वास्थ्य प्रभावों को सीमित करने के लिए बी-विटामिनों का उपयोग करके रोकथामकारी उपाय विकसित किए जा सकेंगे।

भारत में मेंढ़कों की सात नई प्रजातियां खोजी गईं

दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एम. डी. बिजू के नेतृत्व में भारतीय अन्वेषकों के एक दल ने नाइक्ट्रिबैट्रेकस जीनस के रात्रिचर मेंढ़कों की सात नई प्रजातियों की खोज की है। इन सात प्रजातियों मे से चार सूक्ष्म आमाप की हैं; इनकी आमाप 12.2 से 15.4 मिलीमीटर के बीच है और ये एक 5 रुपए के सिक्के पर आराम से बैठ सकते हैं। ये विश्व के सबसे छोटे मेंढ़कों में शामिल हैं। इन नई प्रजातियों की खोज भारत के पश्चिमी घाटों मे पांच वर्ष के व्यापक अन्वेषण के परिणाम स्वरूप हुई है (पियर जे, 21 फरवरी 2017/DOI: 10-77 17/peerj 3007)।

अन्वेषकों के अनुसार, अपने जीनस के अन्य अधिकांशतः प्रवाह जीवी मेंढ़कों के विपरीत, ये लघु मेंढ़क, जंगल की पत्तियों के कूड़े के नीचे की नम जमीन अथवा दलदली वनस्पति में पाए गए थे। पहले अज्ञात रहे इन मेंढ़कों के विषय में एक

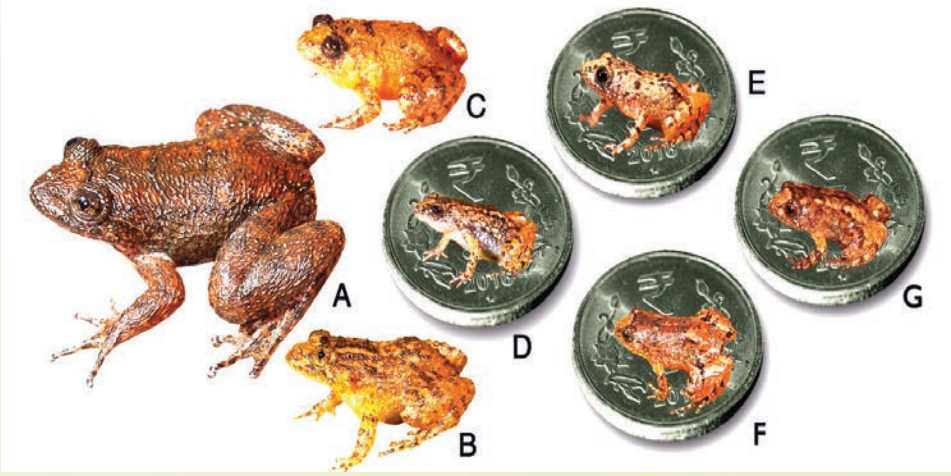

पश्चिमी घाटों से खोजी गई सात नई प्रजातियां। a) रैडक्लिफ का रात्रि मेंढ़क (नाइक्टिबैट्रैकस रैडक्लिफी), b) आथिरापिल्ली रात्रि मेंढ़क (एन. अथिरापिल्लीएंसिस), c) कदलार रात्रि मेंढ़क (एन.वेबिल्ला), d) सबरीमाला रात्रि मेंढ़क (एन. सबरीमलाई), e) विजयन का रात्रि मेंढ़क (एन. पुलीविजयनी), f) मनालार रात्रि मेंढ़क (एन.मनालारी), g) रॉबिन मूर का रात्रि मेंढ़क, d-g सूक्ष्म प्रजातियों का आमाप पांच रुपये के भारतीय सिस्के की तुलना में (श्रेयः एस.डी. बिजू)

विस्मयकारी तथ्य यह है कि ये दुर्लभ प्राणी नहीं हैं। ''बल्कि ये लघु प्रजातियां स्थानिक रूप से बहुलता में पाई जाती हैं और बहुत सामान्य हैं किन्तु इनके अत्यंत छोटे आकार, छुप कर रहने के स्वभाव तथा कीटों जैसी आवाज के कारण इनकी ओर पहले किसी का ध्यान नहीं गया;'' ऐसा कहना है दिल्ली विश्वविद्यालय की सोनाली गर्ग का जो दल की एक सदस्य थीं।

अन्वेषकों का कहना है कि मेंढ़क नई प्रजाति के हैं इस बात की पुष्टि प्रयोगशाला में एक समेकित वर्गीकरण अभिगम का उपयोग करके की गई जिसमें शामिल थेः डी एन ए अध्ययन, व्यापक शरीर विज्ञानी तुलनाएं एवं जैवध्वनिकी। ''इन बहुल स्रोतों से प्राप्त प्रमाणों से इस बात की पुष्टि हुई है कि रात्रिचर मेंढ़कों में विविधता पहले से ज्ञात स्थिति की तुलना में बहुत अधिक है विशेषकर लघुरूपों में यह विविधता उल्लेखनीय है। पहले रात्रि मेंढकों के जीनस की 28 मान्य प्रजातियां थीं जिनमें केवल तीन सूक्ष्म आमाप (18 मि.मी. से कम) की थीं। अब नाइक्टिबैट्रेकस की संख्या बढ़कर 35 हो गई है जिनमें 20 प्रतिशत लघु आमाप के हैं। अन्वेषकों के अनुसार मेढ़कों का यह जीनस भारत के पश्चिमी घाटों में काफी व्यापक है और मेढकों के एक प्राचीन समूह का प्रतिनिधि है जो लगभग सात से आठ करोड़ वर्ष पूर्व भारतीय भूखण्ड में फैले हुए थे।

प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, इस क्षेत्र में उल्लिखित उभयचर प्रजातियों की संख्या में गत दशक में बहुत तेजी से वृद्धि देखने में आई है। वर्ष 2006-15 के बीच वैश्विक स्तर पर उल्लिखित कुल (लगभग 1,581) उभयचर प्रजातियों में सबसे अधिक संख्या (लगभग 182) ब्राजील के अटलांटिक वनों में, उसके बाद (लगभग 159) पश्चिमी घाट-श्रीलंकाई जैवविविधता बहुल स्थलों में देखी गई है, जिनमें से 103 प्रजातियां केवल पश्चिमी घाट क्षेत्रों में पाई गई हैं। प्रो. बिजू जो एक शीर्ष उभयचर जीव वैज्ञानिक हैं, उन्हें भारत में 80 से अधिक नवीन उभयचर प्रजातियों की खोज और पहचान का श्रेय जाता है।

तथापि, अन्वेषकों के अनुसार, इन नई प्रजातियों में अनेक का भविष्य निराशाजनक हो सकता है। सभी नई वर्णित प्रजातियां अभी तक दक्षिण पश्चिम घाट के एक ही क्षेत्र में देखी गई हैं जिसका कुछ भाग संरक्षित क्षेत्र के बाहर है। इनमें से कुछ प्रजातियां पर्यावास को हानि, परिवर्तन, विखंडन तथा मानवीय गतिविधियों जैसे संकटों का सामना कर रही हैं। प्रो. बिजू का कहना है, ''32 प्रतिशत से अधिक, अर्थात पश्चिमी घाटों के एक तिहाई मेंढ़क, पहले ही विलोपन के खतरे से जूझ रहे हैं। सात नई प्रजातियों में से पांच बड़े परिमाण में मानवजनित चुनौतियों का सामना कर रही हैं और उनको तुरंत संरक्षण में प्राथमिकता दिए जाने की आवश्यकता है।''

मकड़ियां पीड़क कीटों की सबसे बड़ी विनाशक हैं

मकड़ियां संभवतः हमारे घरों और पास-पड़ौस में पाए जाने वाले प्राणियों में सर्वाधिक डरावनी हैं। कुछ व्यक्ति तो मकड़ियों को देखते ही डर से पागल जैसे हो जाते हैं। आम मान्यता के विपरीत मकड़ियां कीट नहीं होतीं, वे संधिपाद, अकशेरुक, वायुश्वसनकारी जंतुओं के एक वर्ग से संबंधित हैं जिन्हें 'अरेक्निड' कहते हैं। वर्तमान में 45,000 से अधिक मकड़ी प्रजाजियों का वर्णन किया जा चुका है और इन सबकी जीवनशैली तथा आहार ग्रहण करने के ढंग में बहुत विविधता है। दुनिया का मुश्किल से ही ऐसा कोई भूक्षेत्र होगा जहां मकड़ियां न पाई जाती हों। ''मकड़ियां आर्कटिक के सबसे उत्तरी द्वीपों में, सर्वाधिक गर्म और सूखे रेगिस्तानों में, उच्चतम तुंग शिखरों पर, गुफाओं की गहराइयों में, समुद्रतटों के अंतराज्वार क्षेत्रों में, दलदलों और तालाबों में, उच्च, शुष्क झाबरभूमियों में, रेत के ढूहों में तथा बाढ़ ग्रस्त मैदानों में सभी जगह विद्यमान होती हैं।'' वैज्ञानिकों का अनुमान है कि पृथ्वी के भूक्षेत्र के प्रत्येक वर्ग मीटर क्षेत्रफल में औसतन 131 मकड़ियां रहती हैं और कहीं कहीं तो उतने क्षेत्रफल में 1000 तक मकड़ियों का अस्तित्व हो सकता है।

फ्रूट फ्लाई का आहार करती हुई जंपिंग स्पाइडर (श्रेयः जेफ बुर्चर)

यद्यपि मकड़ियां अपने आप मानवों पर कभी हमला नहीं करतीं किंतु यदि वे अपने को खतरे में महसूस करती हैं तो काट लेती हैं। मकड़ी का विष जो अभिक्रियाएं उत्पन्न करता है वह मकड़ी-मकड़ी के लिए तथा व्यक्ति-व्यक्ति के लिए बदलता है। मकड़ी काटे के लक्षणों में शामिल हैंः ''एक सुई चुभने जैसी अनुभूति, लाल निशान, स्थानीय सूजन अथवा ऐसा घाव जिसके लिए अस्पताल ले जाने की आवश्यकता हो।'' इसलिए सबसे अच्छा यही है कि मकड़ी के स्पर्श से बचा जाए।

यद्यपि देखने में घृणास्पद मालूम पडती हैं, किंतु वास्तव में मकड़ियां हमारी मित्र हैं। उनकी बहुलता और कीटभक्षी आहार की आदतों के कारण ऐसा माना जाता है कि मकड़ियां कीटों की मुख्य शिकारी हैं, जिनमें से अनेक कीट पीड़क माने जाते हैं। मकड़ियां कीटों की विशाल संख्या को नष्ट करती हैं, जिसका उपयोग वे आहार के रूप में करती हैं। अंतर्राष्ट्रीय अन्वेषकों के हाल की के एक अध्ययन के अनुसार, मकड़ियां प्रतिवर्ष 50 करोड़ मेट्रिक टन कीटों का उपभोग करती हैं जो विश्व के समस्त मानवों द्वारा प्रतिवर्ष उपयुक्त मांस और मछली की संयुक्त मात्रा, 40 करोड़ मेट्रिक टन से काफी अधिक है। (द साइंस ऑफ नेचर, 14 मार्च 2017। DOI:10.1007/s00114–017–1440–1)।

ये विस्मयकारी आंकड़े प्राप्त करने के लिए अन्वेषकों ने पहले पृथ्वी पर विद्यमान सभी मकड़ियों के कुल द्रव्यमान का आकलन किया। इसके लिए उन्होंने विभिन्न पर्यावरणों जैसेः ऊष्णकटिबंधीय वनों, शीतोष्ण वनों, ऊष्ण कटिबंधीय घासभूमियों, शीतोष्ण घासभूमियों तथा झाड़ी भूमियों, कृषि भूमि, रेगिस्तानों और आर्कटिक टुंड्रा के मकड़ी जैव भार संबंधी प्रकाशित आंकड़ों का उपयोग किया। फिर उन्होंने समस्त भूमंडल में मकड़ियों के कुल भार का आकलन करने के लिए प्रत्येक प्रकार के पर्यावरण के वैश्विक भूक्षेत्र का उपयोग किया और मकडियों का कुलभार 2.5 करोड़ मेट्रिक टन प्राप्त किया।

तब अन्वेषकों ने दो भिन्न विधियों का उपयोग करके उस आहार (मुख्यतः कीटों) के कुल द्रव्यमान का परिकलन किया जो मकड़ियां एक वर्ष में उपयोग करेंगी। पहली विधि में उन्होंने मकड़ी के प्रति ग्राम द्रव्यमान के संगत उसकी आहार आवश्यकता का आकलन किया जो वातावरण के अनुसार 0.04 से 0.1 मि.ग्राम प्रति ग्राम देह भार प्राप्त हुआ। इस विधि से परिकलित शिकार का द्रव्यमान परिसर 46 करोड़ से 70 करोड़ टन प्राप्त हुआ। दूसरी विधि में उन्होंने क्षेत्र से प्राप्त आंकड़ों को बहिर्वेशित किया जिसमें उन्होंने वास्तव में ही उन कीटों की संख्या की गणना की जो मकड़ियों ने खाए थे। इस विधि से प्राप्त द्रव्यमान परिसर 39.5 करोड़ से 80.5 करोड़ मीट्रिक टन प्राप्त हुआ। अन्वेषकों ने लिखा, ''ये आंकलन हमारे पर्यावरण में मकड़ियों द्वारा शिकार के प्रक्रम की महत्वपूर्ण भूमिका पर बल देते हैं। हमें आशा है कि ये आंकलन और इनके सार्थक रूप से विशाल परिमाण जन जागरण का कार्य करेंगें तथा भौमिक आहार संजाल में मकड़ियों की महत्वपूर्ण भूमिका की प्रशंसा के स्तर में वृद्धि करेंगे।

(अनुवादः रामशरण दास) ■